कपासिका

(वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका)

(प्रवेशांक-2022)

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पोस्ट बैग क्र. 2, शंकरनगर पोस्ट ऑफिस, नागपुर - 440033 (महाराष्ट्र)

दूरभाष - (07103) 275536/38 फैक्स : (07103) 275529

ई मेल : director.cicr@icar.gov.in • वेब साइट : http://www.cicr.org.in

कपासिका

(वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका)

(प्रवेशांक-2022)

संपर्क सूत्र : संपादक

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पोस्ट बैग क्र. 2, शंकरनगर पोस्ट ऑफिस, नागपुर - 440033 (महाराष्ट्र)

दूरभाष - (07103) 275536/38 फैक्स : (07103) 275529

ई मेल : director.cicr@icar.gov.in • वेब साइट : http://www.cicr.org.in

भा.कृ.अनु.प. - केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान
वर्धा रोड, नागपुर (महाराष्ट्र)

कपासिका

(वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका)
(प्रवेशांक - 2022)

वर्ष : 2022 अंक : प्रवेशांक

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. वाय. जी. प्रसाद
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-के.क.अनु.सं., नागपुर

प्रधान संपादक
डॉ. रचना पाण्डे
वरिष्ठ वैज्ञानिक
भा.कृ.अनु.प.-के.क.अनु.सं., नागपुर

संपादक
डॉ. महेन्द्र कुमार साहू
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (रा.भा.)
भा.कृ.अनु.प.-के.क.अनु.सं., नागपुर

संपर्क सूत्र
संपादक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर
पोस्ट बैग क्र. 2, शंकरनगर पोस्ट ऑफिस, नागपुर - 440010 (महाराष्ट्र)
दूरभाष : (07103) 275536/38 फैक्स : (07103) 275529
ई मेल : director.cicr@icar.gov.in वेब साइट : http://www.cicr.org.in

प्रकाशन : **दिसंबर**, 2022 ▪ आवृत्ती : **प्रथम**
मुद्रक : **सूर्य ऑफसेट**, 28, फार्मलैंड, रामदासपेठ, नागपूर - 440010
सर्वाधिकार : **भा.कृ.अनु.प.-के.क.अनु.सं., नागपुर**
ISBN : 978-93-93826-02-2
ISBN 978-93-93826-02-2
9 789393 826022

: केवल विभागीय उपयोग हेतु :

नोट - पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं, संस्थान अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं।

निदेशक की कलम से...

आज मानव ने बहुमुखी प्रगति की है। जीवनावश्यक सुविधाओं को जुटाने हेतु एक ओर उसने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में आश्चर्यजनक शोध एवं आविष्कार किये है। क्षेत्र चाहे विज्ञान का हो या ज्ञान का, इन तमाम मानव प्रगति के पीछे भाषा एवं लिपि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि यदि मानव के पास उसकी अपनी भाषा एवं लिपि नहीं होती तो उसका किसी भी क्षेत्र में प्रगति कर पाना असंभव था। देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी हमारी राजभाषा है और आज हम उसका प्रचार-प्रसार देश के प्रशासन में ही नहीं अपितु ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में करने हेतु संकल्पबद्ध रूप से प्रयासरत है।

अतः इसी लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में 'कपासिका' (प्रवेशांक) का प्रकाशन हमारा एक लघु प्रयास मात्र है और मुझे हर्ष है कि संस्थान राजभाषा (हिंदी) की श्रीवृद्धि के लिए पूरे मनोयोग से प्रयासरत है। मैं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए सभी लेखकों एवं संपादक मंडल तथा विशेष रूप से डॉ. रचना पाण्डे एवं डॉ. महेंद्र कुमार साहू को उनके अथक प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। भविष्य में भी पत्रिका का नियमित रूप से समयबद्ध प्रकाशन होता रहे और यह पत्रिका अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य को सार्थक करे, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।

- डॉ. वाय. जी. प्रसाद
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

प्रधान संपादक की कलम से...

हिंदी हमारे लिये मात्र भाषा नहीं अपितु राष्ट्र की, उसकी संस्कृति तथा उसकी अस्मिता की पहचान है। इस संबंध में हमें यह देखना होगा कि कार्यालयों, कारखानों, शोध संस्थानों और खेतों में काम करने वाले लोग कौन हैं ? आज चाहे औद्योगिक क्रांति हो या कृषि क्रांति, यह तभी संभव होगी, जब हम लोगों तक अपनी बात पहुँचा सकेंगे और कोई भी प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी तभी सही अर्थों में संस्कृति में परिवर्तित हो पाती है, जब वह लोगों तक उनकी भाषा में पहुँचाई जाए। इस दृष्टि से भी हमे हिंदी को देखना चाहिए, उस पर विचार करना चाहिए और उसे व्यवहार में लाना चाहिए। हिंदी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार है और हिंदी का प्रेम देश-प्रेम का ही प्रतीक है। आज समय की यह माँग है कि हम देश के कोने-कोने में राष्ट्रीय हित में राजभाषा(हिंदी) के महत्व से भारतीय जन-मानस को अवगत कराएँ, ताकि देश की भाषा में देश दिन दुगनी रात चौगुनी प्रगति कर सके।

आज हिंदी अपने विपुल शब्द भंडार, अभिव्यक्ति की प्रबल क्षमता और लिपि के वैज्ञानिक स्वरूप के बल पर भारतीय भाषाओं में ही नहीं, अपितु विश्व की सर्वप्रमुख भाषाओं में अपना स्थान बना चुकी है। आज विश्वभर में लगभग एक अरब से अधिक लोग हिंदी का किसी-न-किसी रूप में प्रयोग करते है। यह इसमें निहित क्षमता के कारण ही संभव है। इस स्थिति में हमारा यह नैतिक कर्तव्य है कि हम जिन-जिन क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं वहाँ राजभाषा(हिंदी) का अधिक-से-अधिक प्रयोग करें। आज कृषि-विज्ञान के क्षेत्र में नित नये-नये अनुसंधान एवं प्रयोग हो रहे हैं तथा नयी-नयी जानकारियाँ प्राप्त हो रहीं हैं और इस स्थिति में हमें इन सबकी जानकारी समय रहते किसानों व देश के आम-जनों तक पहुँचाते हुए राष्ट्रीय विकास को गति प्रदान करना है।

अतः इस संबंध में मेरा आपसे अनुरोध है कि कृपया आप 'कपासिका' के सफल प्रकाशन को ही केवल हमारा उद्देश्य न समझें बल्कि 'कपासिका' में प्रकाशित बहुउपयोगी जानकारियों का लाभ उठाते हुए आप सभी हिंदी में कार्य करने की ओर प्रवृत्त हो, यही हमारा वास्तविक लक्ष्य है।

- डॉ. रचना पाण्डे
प्रधान संपादक (कपासिका)
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

संपादकीय

'हिंदी' इस देश के जन-मन में रची-बसी जन-जन की वाणी है तथा हमारी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता की सुरक्षा शक्ति है। इसमें सम्पूर्ण भारतवासियों की आशाएँ-आकांक्षाएँ स्पंदित हैं। हिंदी किसी क्षेत्र या सम्प्रदाय विशेष की भाषा नहीं है। इसमें देश की अंतरात्मा सहज रूप से अभिव्यक्त है। राष्ट्रीयता की वाहिका और भावात्मक एकता की साधिका हिंदी सचमुच परस्पर सम्पर्क एवं समन्वय का सर्वमान्य सेतु है। ये अनेक धर्मों, संप्रदायों, मतमतांतरों, उपबोलियों, बोलियों, भाषाओं की अनेकता में एकता कायम करने वाली कड़ी है। आज विश्वभर में लगभग एक अरब से अधिक लोग हिंदी का किसी-न-किसी रूप में प्रयोग करते है। यह इसमें निहित क्षमता के कारण ही संभव है। संस्थान द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिंदी पत्रिका 'कपासिका' का प्रवेशांक इसी संकल्प को समर्पित एक लघु प्रयास मात्र है जो निःसंदेह संस्थान में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों के मन में हिंदी के प्रति जागरूकता एवं कर्तव्य निष्ठा की भावना को बढ़ावा देगा।

आज मानव ने ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी आदि क्षेत्रों में जो आश्चर्यजनक शोध एवं आविष्कार किये है। उसके पीछे भी भाषा एवं लिपि का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि यदि मानव के पास उसकी अपनी भाषा एवं लिपि नहीं होती तो उसका किसी भी क्षेत्र में प्रगति कर पाना असंभव था। हमें खुशी है कि संस्थान राजभाषा हिंदी की श्रीवृद्धि के लिए पूरे मनोयोग से प्रयासरत है और 'कपासिका' जिसका सुफल है।

हम पत्रिका प्रकाशन के लिए संस्थान के निदेशक डॉ. वाय.जी. प्रसाद के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने हमें इस पत्रिका प्रकाशित करने हेतु प्रोत्साहित किया। इस अंक के प्रकाशनार्थ संस्थान के विभिन्न विभागों एवं अनुभागों में कार्यरत जिन अधिकारियों एवं कर्मचारियों का महत्वपूर्ण योगदान हमें प्राप्त हुआ है, हम उनके हृदय से आभारी हैं। 'कपासिका' पत्रिका के आगामी अंक को और अधिक बहुपयोगी एवं रूचिकर बनाने में आप सभी का सहयोग हमें यथावत् प्राप्त होता रहेगा, इस आशा और विश्वास के साथ..।

- डॉ. महेन्द्र कुमार साहू
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (रा.भा.) एवं
संपादक (कपासिका)
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कृषि/ लोकप्रिय लेख	लेखक	पृ.क्र.
1.	कपास के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. वाय. जी. प्रसाद, डॉ. महेंद्र कुमार साहू	01
2.	देसी कपास विश्व की सर्वश्रेष्ठ शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन)	डॉ. पुनीत मोहन, डॉ. टी. आर. लोकनाथन, डॉ. सुजाता सक्सेना, डॉ. रवि नगरकर, डॉ. विजय नामदेव वाघमारे, डॉ. दिलीप पाटील, डॉ. सुनिल महाजन	05
3.	उत्तर पूर्वांचल के गॉरो हिल्स में उगने वाला श्वेत स्वर्ण (कपास)	डॉ. पुनीत मोहन, डॉ. सरवनन एम. डॉ. सुमन बाला सिंह, डॉ. शिवाजी पालवे, डॉ. विजय नामदेव वाघमारे	11
4.	अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में प्रयोग हेतु *गोसिपियम आरबोरियम* की किस्मों का विकास	डॉ. आर. ए. मीना, डॉ. डी. मोगा, श्री वीर सिंह, श्री पवन कुमार	17
5.	भारत में कपास के किसानों की आय बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकियाँ और रणनीतियाँ	डॉ. एम वी. वेणुगोपालन, डॉ. डी ब्लेज, डॉ. ए.आर. रेड्डी	22
6.	कपास की जड़ों का महत्व : पौधे की विकास और उपज में कैसे बढ़ायें	डॉ. जयंत मेश्राम, डॉ. सुनील महाजन	25
7.	बीटी संकर कपास के विश्व रिकार्ड से आगे	डॉ. अंबाती रविन्द्र राजू, श्रीमती रचना देशमुख, प्रणय तिवारी	29
8.	कपास की शुद्धता बढ़ाएँ और अधिक दाम पाएँ	श्री सुरेश कुमार, डॉ. जल सिंह	31
9.	कपास के उन्नत उत्पादन के लिये व्यवस्थित ढंग से प्राद्योगिकी का प्रबंधन	श्री रोहित कटियार डॉ. पूजा वर्मा डॉ. ब्लेज डिसूजा	33
10.	कपास की खेती में अतिरिक्त लाभ के लिए अंतर फसलों का योगदान	श्री सी. आर मुंडाफले	35
11.	कपास में खरपतवारनाशकों और सूखा सहनशीलता के लिए जैवप्रौद्योगिकी	डॉ. राघवेन्द्र के. पी., डॉ. एच.बी. संतोष, डॉ. जॉय दास, डॉ. राकेश कुमार	37
12.	कपास में तंतु उपज में सुधार के लिए जेवप्रौद्योगिकी	डॉ. राघवेन्द्र के. पी., डॉ. एच. बी. संतोष, डॉ. जॉय दास, डॉ. राकेश कुमार	39
13.	बीटी संकर कपास की खेती के आदानों की लागत कम करें	डॉ. अंबाती रविन्द्र राजू, श्रीमती रचना देशमुख, प्रणय तिवारी	43
14.	पौधों की जड़ो मूलों पर केन्द्रित दूसरी हरित क्रान्ति	डॉ. जयंत एच. मेश्राम	45
15.	भारत में कपास की चुनाई का मशीनीकरण	गौतम मजूमदार डॉ रामकृष्णा जी. आय डॉ. पूजा वर्मा डॉ. ब्लेज डिसूजा	49

क्र.सं.	कृषि/ लोकप्रिय लेख	लेखक	पृ.क्र.
16.	कपास को गुलाबी सूँडी के नुकसान से कैसे बचाएँ?	डॉ. वी. चिन्ना बाबू नाइक, डॉ. विवेक शाह, डॉ. टी. प्रभुलिंगा	52
17.	बीटी कपास के विरुद्ध गुलाबी सूँडी में प्रतिरोधकता एवं विपरीत प्रतिरोधकता	डॉ. चन्द्रशेखर एन., डॉ. पूजा वर्मा, डॉ. सविता संतोष	54
18.	कृषि के नाशीकीटों के प्रबंधन के लिए प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति	डॉ. विवेक शाह, डॉ. वी. चिन्ना बाबू नाइक	56
19.	बैन–एफिड–एक नवाचारी हैकर	डॉ. टी. प्रभुलिंग, डॉ.एच. बी. संतोष, डॉ. रचना पांडे, डॉ. मधु टी. एन	58
20.	मकड़ी विष : नाशीकीट प्रबंधन के लिए एक अद्‌भुत जीवविष	डॉ. टी. प्रभुलिंग, डॉ. विवेक शाह, डॉ. नीलकंठ एस. हिरेमनि, डॉ. बाबासाहेब बी. फंड	60
21.	सूक्ष्म जीवों के उपयोग से पा सकते हैं कीटों एवं रोगों से छुटकारा	श्री रामचंद्र सलामे सुश्री पायल वाघाये, सुशिल मावळे	62
22.	नीम के बीज का अर्क : उत्कृष्ट जैविक कीटनाशक	डॉ. रचना पाण्डे श्रीमती पूजा घोंगे डॉ रामकृष्णा जी. आय.	64
23.	कपास में मधुमक्खियों द्वारा परागण	डॉ. रचना पाण्डे, डॉ पूजा वर्मा	67
24.	कपास में गूलर सड़न	डॉ. दीपक नगराले डॉ. शैलेश पी गावंडे डॉ. रचना पाण्डे डॉ. नीलकंठ हिरेमनि	70
25.	कीट परजीवी सूत्रकृमि कीट नियंत्रण के लिए वरदान	डॉ. वृषाली देशमुख श्रीमती मिथिला मेश्राम डॉ. शैलेश गावंडे डॉ. नंदिनी गोकटे नरखेडकर	73
26.	पादप परजीव सूत्रकृमि : अध्ययन तथा प्रबंधन	श्रीमती मिथिला मेश्राम डॉ. वृषाली देशमुख डॉ. शैलेश गावंडे डॉ. दिपक नगराले डॉ. नंदिनी गोकटे नरखेडकर	76
27.	वैज्ञानिक एवं परम्परागत खेती : आपसी सामंजस्य की आवश्यकता	डॉ. सतीश कुमार सेन श्री संजीव कुमार डॉ. सुरेंद्रकुमार वर्मा डॉ. अमरप्रीत सिंह	81
28.	कपास उत्पादन में आधुनिक कृषि सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व	डॉ. सिद्धार्थ एम. वासनिक,	87
29.	खादी–विचार, कल और आज	डॉ. उल्हास जाजू	89

नोट : उपर्युक्त रचनाओं में प्रकाशित विचार रचनाकार के अपने हैं और उनसे सहमत अथवा असहमत होना 'कपासिका : संपादक मंडल' के लिये आवश्यक नहीं है।

1. कपास के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. वाय.जी. प्रसाद, निदेशक

डॉ. महेन्द्र कुमार साहू, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (रा.भा.)

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

कपास का इतिहास

कपास भारत की आदि फसल है, जिसकी खेती बहुत ही बडी मात्रा में की जाती है। यहा आर्यावर्त में ऋगवैदिक काल से ही इसकी खेती की जाती रही है। भारत में इसका इतिहास काफी पुराना है। हड़प्पा निवासी कपास के उत्पादन में ससार भर में प्रथम माने जाते थे। कपास उनके प्रमुख उत्पादनों में से एक था। भारत से ही 327 ई. पू. के लगभग यूनान में इस पौधे का प्रचार हुआ। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत से ही यह पौधा चीन और विश्व के अन्य देशो को ले जाया गया। विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 150 लाख मिट्रिक टन कपास पैदा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, भारत, ब्राजील, मिस्त्र, सूडान आदि कपास के प्रमुख उत्पादक देश हैं।

'कपास' एक नकदी फसल हैं। इससे रूई तैयार की जाती हैं, जिस "सफेद सोना" कहा जाता हैं। कपास के पौधे बहुवर्षीय, झाडीनुमा वृक्ष जैसे होते है। जिनकी लबाई 26 फीट होती है। पुष्प, सफेद अथवा हल्के पीले रंग के होते है। कपास के फल गूलर (बोल्स) कहलाते है, जो चिकने व हरे पीले रग के होते हैं इनके ऊपर ब्रेक्टियोल्स काँटों जैसी रचना होती है तथा फल के अन्दर बीज होते है।

कपास उत्पादन के लिए भौगोलिक दशाएँ

भारत मे लगभग 9.4 मिलियन हेक्टेयर की भूमि पर कपास की खेती की जाती हैं। इसके प्रत्येक हेक्टेयर क्षेत्र में 2 मिलियन टन कपास के डठल अपशिष्ट के रूप में विद्यमान रहते हैं। वर्तमान समय में कपास की खेती एक बहुत बडे क्षेत्रफल मे हो रही है। मानव जीवन मे इसका महत्व है। इसीलिए कपास की माग दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही है। कपास की खेती के लिए निम्न भौगोलिक अवस्थाएँ आवश्यक होती है –

तापमान

कपास के पौधे के लिए उच्च तापमान, साधारणतः 20 सेंटीग्रेडस से 30 सेंटीग्रेडस तक, की आवश्यकता पडती है, किन्तु यह 40 सेंटीग्रेड्स तक की गर्मी में भी पैदा किया जा सकता। पाला अथवा ओला इस फसल के लिए घातक है। अतः इस पौधे के विकास के लिए कम–से–कम 210 दिन पाला–रहित ऋतु चाहिए। गूलर खिलने के समय स्वच्छ आकाश, तेज और चमकदार धूप का होना आवश्यक है, जिससे रेशे मे पर्याप्त चमक आ सके और गूलर पूरी तरह खिल सकें। समुद्री पवनों के प्रभाव में उगने वाली कपास का रेशा लम्बा और चमकदार होता है।

वर्षा

कपास के लिए साधारणतः 50 से 100 से.मी. तक की वर्षा पर्याप्त होती है। यह मात्रा थोडे–थोडे दिनों के अतर से प्राप्त होनी चाहिए। 100 से.मी. से अधिक वर्षा भागों में इसकी खेती नहीं हो सकती। जहां वर्षा कम होती है, वहां सिंचाई के सहारे कपास पैदा की जाती है। शुष्क प्रदेशों में कीडा कम लगने के कारण ही सिंचित अवस्था में कपास अधिक पैदा की जाती है।

मिट्टी

कपास का उत्पादन विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में किया जा सकता है, किन्तु आर्द्रतापूर्ण दक्षिणी भारत की चिकनी और काली मिटटी अधिक लाभप्रद मानी जाती है। सामान्यतः भारत में कपास तीन प्रकार की मिटिटयों में पैदा की जाती है–

1. भारी काली दोमट मिटटी, जो गुजरात व महाराष्ट्र राज्यों में मिलती है। भारत में कपास का सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र भरूच, अहमदाबाद तथा खानदेश जिलों में फैला है।
2. लाल और काली चटटानी मिट्टी, जो दक्कन, बरार और मालवा के पठार पर फैली है।

3. सतलज और गंगा के हल्की कछारी मिटटी के क्षेत्र में। दक्षिण भारत की काली मिट्टी कपास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, इसलिए इस रेगुर मिटटी के नाम से भी जाना जाता है।

श्रम

कपास की खेती में कपास युक्त कपास को चुनने के लिए मजदूरों की आवश्यकता पडती है। ज्यों ही पौधे पर गूलर निकलकर बडे होने लगें त्यों ही उनको चुन लेना आवश्यक होता है अन्यथा 3–4 बार में इन गूलरों से कपास इकटठा किया जा सकता है। दिन भर में एक श्रमिक 15–20 किलो ग्राम तक कपास चुन सकता है। इसकी कृषि के लिए दक्षिण भारत की जलवायु उत्तरी भारत की अपेक्षा अनुकूल है, क्योंकि यहा जाडे में भी तापमान ऊंचा रहता है। उत्तरी पश्चिमी भारत के कोहरा, बादल, वर्षा व ओले के प्रभाव एवं कभी–कभी पाले से फसल को क्षति पहुँचती है। जिस कारण गूलरों में कीडा लग सकता है।

कृषि

भारत में कपास के साथ कई अन्य फसल भी बोयी जाती हैं इसके साथ सबसे अधिक मूंगफली बोते हैं। पजाब में अमेरीकन और देशी कपास मिलाकर बोते हैं। उत्तर प्रदेश में इस मेथी, मूग, बरसीम, तोरिया, क्लोवर आदि फसलों के साथ बोते हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में इसके साथ ज्वार बोया जाता है। लाल मिटटी वाले क्षेत्रों में कपास के साथ अरण्डी, तिल, ज्वार या बाजरा बोया जाता है। मध्य महाराष्ट्र और पश्चिमी महाराष्ट्र के काली मिट्टी वाले क्षेत्र में कपास और मक्का तथा गुजरात में कपास और अरण्डी तथा धान और आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी भाग में कपास और मूगफली तथा रागी साथ–साथ बोए जाते है। उत्तरी भारत में कपास का पौधा तैयार होने में 6 महीने लग जाते हैं, जबकि दक्षिणी भारत में 8 महीने तक लगते हैं।

उत्पादन

सयुक्त राज्य अमेरिका कपास उत्पादन में विश्व का सबसे बडा उत्पादक देश है। यहा विश्व का लगभग 22% कपास पैदा किया जाता है। चीन में विश्व का 17% कपास का उत्पादन किया जाता है। चीन में याग्टसी नदी की निचली घाटी तथा हवांग–हो नदी का उपरी डेल्टा कपास के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। भारत में कपास का कुल 8% उत्पादन किया जाता है। कपास उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। कपास उत्पादन के प्रमुख राज्यों में क्रमशः महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश प्रमुख हैं। अन्य उत्पादक देशों में ब्राजील का साओपोलो क्षेत्र, मिस्त्र का नील डेल्टा, सूडान का जजीरा व सफेद नील घाटी तथा पाकिस्तान आदि महत्वपूर्ण है।

कपास की किस्म

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में लगभग 14 किस्मों की कपास पैदा की जाती है। इनकी अच्छाई या बुराई, उनकी मजबूती, धागे, सूक्ष्मता, रंग, चमक और मोटाई की प्रतिशतता पर निर्भर करती है। ये किस्में इस प्रकार हैं –

रेशे की लम्बाई के अनुसार कपास तीन प्रकार की होती है –

1. **छोटे रेशे वाली कपास –** इसका धागा 19 मिमी. से कम होता है। इसकी मुख्य किस्में चित्रापथी, बुगरा, उकरा, कोमिला, उत्तर प्रदेश देशी, राजस्थान देशी तथा मथिआं है। इसका उत्पादन अधिकतर असम, मणिपुर, त्रिपुरा, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब और मेघालय में किया जाता है। कुल उत्पादन का 15 प्रतिशत इसी प्रकार की कपास का होता है।
2. **मध्यम रेशे वाली कपास –** इसका धागा 20 मिमी. से 24 मिमी. तक लम्बा होता है। इसकी मुख्य किस्म प्रभानी, गारानी, पंजाब, अमेरिकन, दिग्विजय, विजल्प, संजय, इन्दौर–2, बूडी एल–147, खानदेश, गिरनार जयधर, काकीनाडा, कल्याण, उत्तरी, जरीला, बीरम, मालवी, राजस्थान अमरीकन हैं। कुल उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत इसी प्रकार की कपास का होता है।
3. **लम्बे रेशे वाली कपास –** इसका धागा 24.5 मिमी. से 27 मिमी. तक लम्बा होता हैं। इसकी मुख्य किस्में गुजरात, देवीराज, समुद्री कपास, बदनावर–1, मद्रास, कम्बोडिया, सुजाता, बूदी और लक्ष्मी है। कपास के कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत इस किस्म का होता है।

भारत में उत्पादक क्षेत्र

भारत में कपास की खेती का क्षेत्र अत्यन्त बिखरा हुआ है। इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जलवायु, मिटटी और उत्पादन की दशाएँ पायी जाती हैं। अतः प्रत्येक क्षेत्र की कपास अन्य क्षेत्रों से भिन्न होती है और उस क्षेत्र की अवस्थाओं के अनुरूप होती है। कपास के उत्पादन की दृष्टि से दक्षिण की काली मिटटी का प्रदेश बडा महत्वपूर्ण है। गुजरात, कर्नाटक, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश मिलकर देश के उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत कपास उत्पन्न करते हैं। देश की लगभग 60 प्रतिशत कपास का उत्पादन केवल तीन राज्यों गुजरात, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में होता है अन्य मुख्य उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश और हरियाणा है।

गुजरात में कुल क्षेत्र का 21.7 प्रतिशत तथा उत्पादन का 31. 9 प्रतिशत कपास मिलता है। कपास उत्पादन के क्षेत्र में इस राज्य का देश में पहला स्थान है। समुद्रतटीय क्षेत्रों को छोडकर मुख्यतः तीन क्षेत्रों में कपास पैदा की जाती है। अधिकतर उत्पादन वर्षा के

सहारे ही होता है। इस राज्य में छोटे व मध्यम रेशे वाली देसी कपास पैदा की जाती है–

1. उत्तरी गुजरात के अहमदाबाद, मेहसाना और बनासकांटा जिलों में साबरमती नदी के पार सौराष्ट्र और उत्तरी तथा कच्छ में धौलेरा और वागड़ किस्म की कपास पैदा की जाती है। अमरेली अहमदाबाद तथा दक्षिणी सौराष्ट्र में कम गुणवत्ता वाली किस्म की कपास पैदा होती है।
2. मध्य गुजरात के भरूच, बड़ोदरा, खेड़ा, गोहिलवाड़, पंचमहल, साबरकांठा जिले में भरौच कपास पैदा की जाती है।
3. दक्षिणी गुजरात के सूरत और पश्चिमी खानदेश जिलों में सूरती, नवसारी तथा अमरीकन किस्में पैदा की जाती है।
4. गुजरात में माही और नर्मदा नदी के बीच के क्षेत्रों में सबसे अधिक कपास पैदा की जाती है।

महाराष्ट्र कपास के उत्पादक क्षेत्रों में प्रमुख है

यहाँ कुल क्षेत्र का 31 प्रतिशत पाया जाता है, जबकि कुल उत्पादन का 21.7 प्रतिशत होता है, अर्थात उत्पादन की दृष्टि से इस राज्य का देश में दूसरा स्थान है। यहां कपास जून से अगस्त तक बोयी जाती है और दिसम्बर–जनवरी तक चुन ली जाती है। यहां कपास का उत्पादन कई क्षेत्रों में किया जाता है–

1. अकोला और अमरावती जिलों में उमरा और कम्बोडिया कपास बोयी जाती है।
2. यवतमाल जिले में पुसद, दारव्हा तालुकाओं में उमरा और कम्बोडिया कपास होती है।
3. बुलढाना जिले के मलकापुर, मेहकर, खामगांव और जलगांव तालुकों में उमरा और कम्बोडिया कपास पैदा की जाती है। इन सब जिलों में कपास वर्षा के सहारे पैदा की जाती हैं।
4. नागपुर, वर्धा, चंद्रपुर और छिन्दवाड़ा जिलों में कम्बोडिया कपास वर्षा के सहारे ही पैदा की जाती है।
5. सांगली, बीजापुर, नासिक, अहमदनगर, सोलापुर, पुणे तथा परभणी अन्य उत्पादक जिले हैं, यह उमरा और खानदेशी कपास होती है। इस राज्य में 43 लाख गांठ कपास का उत्पादन होता है।

मध्य प्रदेश में जून में बुवाई की जाती है और नवम्बर से फरवरी तक चुनाई की जाती है। यहाँ मालवाड़ के पठार एवं नर्मदा और ताप्ती घाटियों में काली और कछारी मिट्टियों में इसका उत्पादन किया जाता है। पश्चिम नीमाड़, इन्दौर, रायपुर, धार, देवास, उज्जैन, रतलाम, मन्दसौर जिलों में उमरा, जरीला, बिरनार, मालवी और इन्दौरी कपास बोयी जाती है। मध्य प्रदेश में प्रतिवर्ष लगभग 12 लाख गाँठ कपास का उत्पादन होता है।

राजस्थान में गंगा नहर क्षेत्र में श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिले में पंजाब–देसी और पंजाब–अमरीकन, झालावाड़ कोटा, टोंक, बूंदी जिलों में मालवी कपास तथा भीलवाड़ा, बांसवाड़ा, चित्तौड़ और अजमेर जिलों में राजस्थान देसी और अमरीकन कपास बोयी जाती हैं। इस राज्य में 6 लाख गाँठ कपास का उत्पादन होता है।

पंजाब में कपास की बुवाई मार्च से अगस्त तक और चुनाई जनवरी तक की जाती है। अधिकतर उत्पादन सिंचाई के सहारे किया जाता है। प्रमुख उत्पादक जिले पंजाब में अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, पटियाला, संगरूर और भटिंडा हैं। इनमें अधिकतर पंजाब–अमरीकन कपास पैदा की जाती है, यहां पर वर्तमान में 24 लाख गांठ का उत्पादन होता है।

हरियाणा में भी पंजाब के समान सिंचाई के सहारे कपास उत्पन्न की जाती है। गुड़गाँव, करनाल, हिसार, जिन्द, अम्बाला और रोहतक प्रमुख कपास उत्पादक जिले हैं। यहाँ पंजाब अमेरिकन और पंजाब–देशी कपास बोयी जाती हैं। इस राज्य में 8 से 10 लाख गाँठ का प्रतिवर्ष उत्पादन होता है।

उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से गंगा और यमुना के दोआब तथा रूहेलखंड और बुन्देलखंड संभागों में सिंचाई के सहारे छोटे रेशे वाली कपास पैदा की जाती है। साथ में ही लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन भी अब किया जाने लगा है। मेरठ, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, एटा, सहारनपुर, बुलन्दशहर, अलीगढ़, आगरा, इटावा, कानपुर, रामपुर, बरेली, मथुरा, मैनपुरी और फर्रुखाबाद प्रमुख उत्पादक जिले हैं। यहां देशी और पंजाब–अमेरिकन कपास पैदा की जाती है।

तमिलनाडु में कपास दोनों ही मानसून कालों में किसी–न–किसी क्षेत्र में बोयी जाती है। यहां अधिकतर कम्बोडिया, युगांडा, मद्रास–युगांडा, सुजाता, सलेम, तिरुचिरापल्ली, लक्ष्मी, कालंगानी किस्म की कपास पैदा की जाती है। यह सारा उत्पादन काली मिट्टी के क्षेत्रों में किया जाता है। कपास उत्पादक प्रमुख जिले कोयम्बटूर, सलेम, रामनाथपुरम, मदुरै, तिरुचिरापल्ली, चिंगलपुट, तिरुनलवेली व तंजावूर हैं।

आन्ध्र प्रदेश में कपास का उत्पादन गुण्टूर, कड़प्पा, कुर्नूल, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, महबूबनगर, आदिलाबाद और अनंतपुर जिलों में किया जाता है। यहां मुख्यतः मुगरी, विरनार, कम्पटा, कार्कोनाडा, समानी–अमरीकन, लक्ष्मी, समुद्री किस्म बोयी जाती है। भारत में आन्ध्र प्रदेश तीसरा कपास उत्पादक राज्य है। कपास के कुल उत्पादन का 13.49 प्रतिशत आन्ध्र प्रदेश में उत्पादित होता है।

कर्नाटक में कुल क्षेत्रफल का 12 प्रतिशत और उत्पादन का 5.3 प्रतिशत कपास प्राप्त होता है। यहाँ दो प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। प्रथम क्षेत्र काली मिट्टी का है, जिसे 'एरीहट्टी' क्षेत्र कहते

हैं। इसके अंतर्गत बेल्लारी, हसन, शिवमोगा, चिकमंगलूरू, रायचूर, गुलबर्गी, धारवाड़, बीजापुर और चित्रदुर्ग जिला में वर्षा के सहारे अधिकतर देशी कपास पैदा की जाती है। दूसरा क्षेत्र लाल मिट्टी का है, जिसे 'दोड़ाहट्टी' कहते हैं। इसमें वर्षा और सिंचाई दोनों के सहारे पंजाब अमरीकन कपास बोयी जाती है।

अन्य उत्पादक राज्यों में बिहार, उडीसा, पश्चिम बंगाल, असम व मेघालय प्रमुख हैं, जहां कहीं–कहीं कपास पैदा की जाती है। खासी, जयन्तिया, सिकिर, लुशाई, नागा और गारो पहाडियों में सीढ़ीदार खेतों में वनों को जलाकर साफ की गयी भूमि में कपास पैदा की जाती है। बिहार में सारणा, चम्पारण, संथाल परगना, मुजफ्फरपुर, झारखंड में हजारीबाग और रांची जिलों में तथा उडीसा में धेनकनाल, कटक, सुन्दरगढ और कोरापुट जिलों में तथा पश्चिमी बंगाल में चौबीस परगना और मुर्शिदाबाद जिलों में कपास पैदा की जाती है।

व्यापार

देश के विभाजन के पूर्व कपास पैदा करने में भारत का विश्व में दूसरा स्थान था और यहा पर काफी मात्रा में कपास का निर्यात किया जाता था। वर्तमान में भारत लम्बे रेशे की चमकीली व उत्तम कपास का आयात करता है एवं छोटे रेशे की कपास का निर्यात करता हैं। भारत की छोटे रेशे वाली खुरदरी कपास की मांग संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में अब भी रहती है। यहां पर ऊन के साथ मिलाकर मोटे कम्बल व मोटे वस्त्र बनाए जाते हैं। थोडी मात्रा में रूई का निर्यात यूरोपीय साझा बाजार के देशों तथा न्यूजीलैण्ड को भी किया जाता है। लम्बे रेशे वाली रूई का आयात पाकिस्तान, मिस्त्र, संयुक्त राज्य अमरीका, पेरू आदि देशों से किया जाता है।

उपसंहार

कपास के कुल उत्पादन में गन्ना एवं सरसों की भांति तेजी से उत्पादन बढ़ाना बहुत आवश्यक है। जिसे प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाकर एवं सिंचित क्षेत्रों में इसकी कृषि की नवीन तकनीकों को अपनाकर किया जा सकता है, अन्यथा बढता हुआ आयात भारत की विदेशी मुद्रा को भी कुप्रभावित करेगा। वैसे नवीन तकनीकियों, उपचारित बीज, जैव तकनीक एवं सिंचित कृषि के द्वारा नरम कपास व अन्य उन्नत किस्मों का उत्पादन औसत से तीन से चार गुना यानि की 800 से 900 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त किया जा सकता है।

भारत का संविधान

भाग 17, अनुच्छेद 351

हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तान के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

2. देसी कपास विश्व की सर्वश्रेष्ठ शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन)

डॉ. पुनीत मोहन, प्रधान वैज्ञानिक

डॉ. टी.आर. लोकनाथन, प्रधान वैज्ञानिक

डॉ. सुजाता सक्सेना, डॉ. रवि नगरकर

डॉ. विजय नामदेव वाघमारे, विभाग प्रमुख

डॉ. दिलीप पाटील, वरिष्ठ वैज्ञानिक

डॉ. सुनिल महाजन, प्रधान वैज्ञानिक

फसल सुधार विभाग, भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पिछले दो दशक से निरतर स्वास्थ्य रक्षा सामग्री एवं शल्य चिकित्सा में कपास के उत्पादन की माँग बढती रही हैं। नवीन तकनीकों से विकसित कपास उत्पादों जैसे - सेनेटरी नेपकिन, डायपर, कॉटन बॉल, कॉटन गाज, सूक्ष्म जीवाणु रहित शोषक रूई (स्टरलाइज्ड एबजोरबेन्ट सर्जिकल कॉटन), इत्यादि के प्रति उपभोगताओं में जागरूकता के नवीन आयाम विकसित हो गये, फलस्वरूप कपास के उत्पादों की खपत में प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत वृद्धि एवं माँग का समीकरण स्थापित हो गया है।

नवीन तकनीकी एवं शोध परीक्षण के निष्कर्ष के आधार पर ये सुनिश्चित हो चुका है कि भारतीय देसी कपास - विश्व की सर्वश्रेष्ठ शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन) है। वर्तमान में केन्द्रीय कपास अनुसधान सस्थान, नागपुर में शोषक रूई उत्पन्न करने वाले देसी कपास की किस्मो के विकास के लिये शोध परियोजनाएँ प्रारभ की गयी हैं। सस्थान में अग्रवर्ती आशाजनक देसी कपास की सुधारित किस्में सी एन ए 418 (सी एन ए 2014-1), सी एन ए 423 (सी एन ए 2014-2), सी एन ए 441 (सी एन ए 2014-3), सी एन ए 443 (सी एन ए 2014-4), सी एन ए 444 (सी एन ए 2014-5), सी एन ए 447 (सी एन ए 2014-6), सी एन ए 2014-7, सी एन ए 2014-8, और सी एन ए 2014-9 पर शोध कार्य प्रगति पर है। उक्त शोध परियोजनाओं का उद्देश्य दूरगामी है, क्योंकि देसी कपास की खेती के निरंतर सिमटते जा रहे क्षेत्र को पुनर्जीवित करना और कृषकों को अतिरिक्त आय का साधन उपलब्ध कराना है। उपभोगताओं की स्वीकृति नवीन लघु उद्योगों को विकसित करने में नये आयाम दे सकेगी, जो कि किसान के विकास के हित में होगा और रोजगार के नये दरवाजे खुलेंगे।

पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद एवं प्राचीन साहित्य संदर्भ में प्रमाण सहित उल्लेखित है कि 600 ईसा पूर्व भारत में कपास की खेती होती थी और 6000 वर्ष पूर्व हडप्पा काल के इतिहास में भी इसके संकेत एवं विवरण उपलब्ध हैं। वर्तमान में कपास जगत के विश्व पटल पर भारत ऐसा देश है जहाँ कि कपास की चारों जातियाँ *गॉसीपियम आरबोरियम, गॉसीपियम हर्बेशियम, गॉसीपियम हिर्सुटम और गॉसीपियम बारबेडेन्स* की किस्में और उनके संकरों की खेती वाणिज्यिक एवं व्यापारिक पैमाने पर लगभग 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है।

देसी कपास (*गॉसीपियम आरबोरियम*) का उदभव स्थान, विकास केन्द्र एवं मूल घर भारत हैं। पिछले दो दशक से बीटी कपास के संकरों का प्रवेश कृषि जगत में तीव्र गति से होता रहा, फलस्वरूप देसी कपास का क्षेत्र निरंतर सिमटता चला गया और इसके विपरीत देसी कपास से निर्मित स्वच्छता एवं स्वास्थ रक्षा उत्पादों की माँग में वृद्धि दर्ज की गयी।

वर्तमान में देसी कपास की खेती हेतु पुनः कृषक जगत में जागरूकता का अवलोकन किया गया। देसी कपास के भौतिक एवं रासायनिक गुण उच्च श्रेणी के होने के कारण शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन) निर्माण हेतु कपास को पूर्णतया उत्तम पाया गया। विश्व में उगाये जाने वाली कपास की विभिन्न जातियों की तुलना में देसी कपास (*गॉसीपियम आरबोरियम*) शोषक रूई के निर्माण हेतु सर्वश्रेष्ठ है। वर्तमान में देसी कपास की किस्में बंगाल देसी, आर जी–8, कोमिला कॉटन, फूल धन्वंतरी का उपयोग शोषक रूई के निर्माण के लिये किया जाता है,। उक्त किस्मों की रूई उच्च शोषकता गुण युक्त हैं यद्यपि इन किस्मों की रूई को दूसरी किस्म की रूई के साथ मिश्रित करके शोषक रूई का निर्माण निजी कम्पनियां द्वारा व्यापारिक स्तर पर किया जाता है। बंगाल देसी, आर जी–8, कोमिला कॉटन में रेशे/तन्तु का माइक्रोनर 7 इकाई से अधिक पाया गया जो कि शोषकता का महत्वपूर्ण गुण है। फलस्वरूप निजी कम्पनियों के पास वर्तमान में अन्य विकल्प न्यूनतम हैं।

शोषक रूई से निर्मित स्वास्थ्य रक्षा उत्पाद :

स्वास्थ्य रक्षा एवं शल्य चिकित्सा क्षेत्र में शोषक रूई की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में नवीन तकनीकी का प्रवेश, उपभोक्ताओं की जागरूकता, बाजार में प्रतिस्पर्धा, इत्यादि के कारण स्वास्थ्य रक्षा सामाग्री एवं शल्य चिकित्सा से संबंधित कपास के उत्पादों की माँग एवं आपूर्ति के नये आयाम विकसित हो गये। कपास के उत्पादों की खपत म प्रति वर्ष 10 प्रतिशत वृद्धि का समीकरण स्थापित हो गया। निम्न लिखित शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन) के उत्पादों का उपयोग निरन्तर प्रगति पर हैं।

1. डायपर पैडस
2. स्वच्छता नेपकिन्स (सेनेटरी नेपकिन्स)
3. शल्य बेंडेज/पटटी (सर्जिकल बेंडेज)
4. सूक्ष्म जीवाणु रहित शल्य चिकित्सा शोषक रूई (स्टरलाइज्ड सर्जिकल कॉटन)
5. शल्य चिकित्सा ड्रेसिंग सामग्री
6. एडहेसिव बॅंडेज
7. शोषक पैड (एबजोरबेन्ट पैड)
8. शोषक रूई रोल
9. इलास्टिक बॅंडेज
10. शोषक गॉज (एबजोरबेन्ट गॉज)
11. इयर बड्स
12. जिग–जाग शल्य चिकित्सा पट्टी

शोषक रूई से निर्मित स्वास्थ्य रक्षा उत्पाद :

डायपर पैड्स एवं स्वच्छता नेपकिन्स (सेनेटरी नेपकिन्स)

सूक्ष्म जीवाणु रहित शल्य चिकित्सा शोषक रूई (स्टरलाइज्ड सर्जिकल कॉटन)

शल्य बैंडेज/पट्टी (सर्जिकल बैंडेज)

एडहेसिव बैंडेज

शल्य चिकित्सा ड्रेसिंग सामग्री

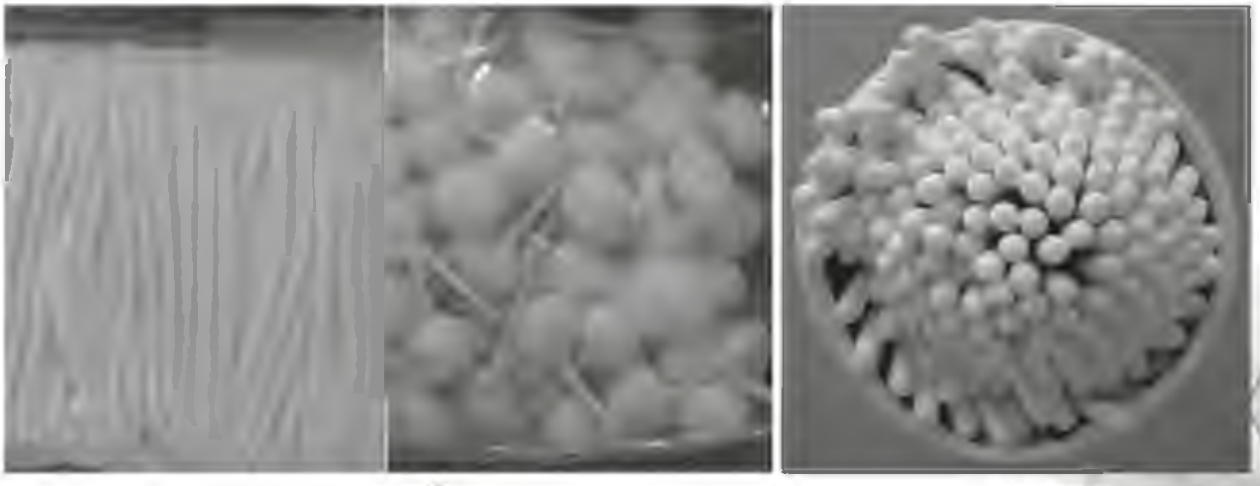

बाती

इयर बड्स

शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन) के भौतिक एवं रासायनिक गुण :

एबजोरबेन्ट कॉटन (शोषक रूई) के निर्माण में विशिष्ट मानको का निर्धारण किया गया जिसके फलस्वरूप शोषक रूई के गुणों की उत्तमता का संकेत मिलता है। विश्व में शोषक रूई की गुणवत्ता एवं उत्तमता हेतु निम्न मानक निश्चित किये गये हैं।

(अ) आय पी/आय पी एस : इंडियन फार्मोकोपिया मानक (स्टेन्डर्ड)

(ब) बी पी : ब्रिटिश फार्मोकोपिया मानक

(क) ई पी : यूरोपियन फार्मोकोपिया मानक

उपरोक्त सभी मानको में महत्वपूर्ण भिन्नता नहीं पायी गयी। सारणी–1 में भारतीय फार्मोकोपिया के मानक (स्टेन्डर्ड) प्रस्तुत किये गये हैं। साधारण शोषक रूई निर्माण हेतु यांत्रिक, भौतिक एवं रासायनिक विधि को रेखा–चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सारणी–1 :

इंडियन फार्मोकोपिया मानक 1996 एवं 2007 के अनुसार शोषक रूई (एबजोरबेन्ट कॉटन) के भौतिक एवं रासायनिक गुण

क्र.	परीक्षण	आवश्यक मानक
1	अम्लीयता/क्षारीयता	फीनोल फेथीलायन द्रव के और मिथाइल आरेन्ज द्रव के साथ क्रिया करने पर गुलाबी रंग का अनुपस्थित होना
2	सतह पर क्रियाशील पदार्थ	द्रव तरल स्तर से झाग की ऊँचाई 2 मि.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिये
3	कपास के बीज/अशुद्ध नेप्स इत्यादि के बारीक टुकडे	250/450 वर्ग से.मी. क्षेत्र से अधिक नहीं होने चाहिये
4	शोषकता	10 सेकेन्ड से अधिक नहीं
5	रंगीन घुलनशील पदार्थ	हल्का पीला, परन्तु नीला या हरा रंग नहीं
6	जलीय घुलनशील पदार्थ	0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं
7	ईथर घुलनशील पदार्थ	0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं
8	द्रव में रूई तैरने का औसत समय	1.8 सेकेन्ड से अधिक नहीं
9	सल्फेट राख	0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं
10	सूखने पर रूई का भार	0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं
11	तन्तु चिकनापन (माइक्रोनेयर)	6 से अधिक होना चाहिये
12	जलधारण क्षमता	19 ग्राम से अधिक होना आवश्यक है
13	रूई के रोल की सतह की संख्या	174 सतह की संख्या से अधिक नहीं (500 ग्राम रूई)
14	रूई के तन्तु की लम्बाई	20 मि.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिये

साधारण शोषक रूई निर्माण हेतु यांत्रिक, भौतिक एवं रसायनिक विधि

रूई की गाँठ

⬇

ट्रैश सेपरेटर यंत्र (कचरा तथा अशुद्धता को अलग करना)

⬇

रेशे से मोम की सतह मुक्त करना

⬇

3 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड 1:20 अनुपात पानी में डाल कर 90 मिनट तक, 130° सेंटीग्रेड तापमान पर स्थापित करना

⬇

रोटरी डायजेस्टर में पकाना

⬇

तंतु/रेशे को पानी से धुलाई करके साफ करना

⬇

विरंजन प्रतिक्रिया (प्रथम)

⬇

रेशे के वजन के अनुसार 3 प्रतिशत उपलब्ध सोडियम हाइड्रोक्लोराइड 1:20 अनुपात में पानी की मात्रा का प्रयोग कर 90° सेंटीग्रेड तापमान पर 120 मिनट तक विरंजन किया जाना आवश्यक है

⬇

विरंजन प्रतिक्रिया (द्वितीय) 0.2 प्रतिशत हाइड्रोजन पर–आक्साइड के साथ 1:20 अनुपात में पानी का उपयोग कर के 90° सेंटीग्रेड तापकम पर 60 मिनट तक विरंजन

⬇

विभिन्न स्तरीय लैप बनाना।

⬇

कार्डिंग

⬇

रोल निर्माण

⬇

उचित आकार की कटिंग

⬇

अंतिम उत्पाद

शोषक रूई उत्पादन करने वाली देसी कपास की किस्मों के विकास हेतु केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर में शोध कार्य प्रगति पर है। संस्थान द्वारा देसी कपास (*गॉसीपियम आरबोरियम*) के आशाजनक 9 संवर्धो सी एन ए 418 (सी एन ए 2014–1), सी एन ए 423 (सी एन ए 2014–2), सी एन ए 441 (सी एन ए 2014–3), सी एन ए 443 (सी एन ए 2014–4), सी एन ए 444 (सी एन ए 2014–5), सी एन ए 447 (सी एन ए 2014–6), सी एन ए 2014–7, सी एन ए 2014–8, और सी एन ए 2014–9 का विकास किया गया है। उपरोक्त सवर्धो के रूई के नमूनों का मूल्यांकन केन्द्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मुंबई, मैसर्स तपस बायोकेयर, हैदराबाद और मैसर्स राठी केमिकल्स, नागपुर द्वारा किया गया। रूई मूल्यांकन में क्रमशः सी एन ए 2014–2, सी एन ए 2014–7, सी एन ए 2014–8, एवं सी एन ए 2014–9 उत्तम पाये गये। उपरोक्त आशाजनक संवर्धन में गूलर भार, उच्च उपज, उच्च ओटाई क्षमता हेतु शोध कार्य प्रगति पर है।

<u>सारणी 2 :</u>

शोषकता हेतु देसी कपास की रुई के नमूनों का मूल्यांकन केन्द्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मुंबई, मेसर्स तपस बायोकेयर, हैद्राबाद एवं मेसर्स राठी केमिकल्स, नागपुर द्वारा किया गया।

देसी कपास के नमूने	ईथर घुलनशील पदार्थ (प्रतिशत)	राख (प्रतिशत)	अम्लीयता	क्षारीयता	नमी (प्रतिशत)	शोषकता समय (सेकेन्ड)	द्रव में रुई के तैरने एवं डूबने का समय (सेकेन्ड)	जल धारण क्षमता (ग्रा./ग्रा. रुई)	तन्तु/रेशे की लम्बाई (मि. मी.)	तन्तु/रेशे की चिकनाई (माइकोनेयर)
सी एन ए 2014–1	0.36	0.38	रहित	रहित	7.6	1.3	2.0	29.8	23.8	5.8
सी एन ए 2014–2	0.45	0.46	रहित	रहित	6.9	1.5	1.7	28.1	24.2	6.0
सी एन ए 2014–3	0.40	0.42	रहित	रहित	6.9	1.6	2.0	28.3	24.8	5.9
सी एन ए 2014–4	0.44	0.38	रहित	रहित	7.0	1.5	2.0	28.5	24.1	6.1
सी एन ए 2014–5	0.37	0.38	रहित	रहित	7.1	1.5	2.5	26.1	26.6	5.2
सी एन ए 2014–6	0.35	0.34	रहित	रहित	6.9	1.3	2.4	26.7	23.9	5.7
सी एन ए 2014–7	0.43	0.44	रहित	रहित	7.8	1.5	2.0	27.1	24.6	6.3
सी एन ए 2014–8	0.40	0.38	रहित	रहित	7.6	1.5	2.2	27.6	19.7	5.7
सी एन ए 2014–9	0.38	0.36	रहित	रहित	7.9	1.2	1.8	26.0	20.6	6.5
फुल धन्वतरी (तुलना हेतु)	0.39	0.34	रहित	रहित	7.1	1.4	2.0	28.0	20.4	6.9

नवीन तकनीको एवं शोध परीक्षण के आधार पर ये सुनिश्चित हो चुका है कि भारतीय कपास (*गोसीपियम आरबोरियम*) विश्व की सर्वश्रेष्ठ शोषक रुई (एबजोरबेन्ट कॉटन) है। केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान द्वारा शोध कार्य एवं परियोजनाओं का उद्देश्य दूरगामी है क्योंकि देसी कपास की खेती के निरंतर सिमटते क्षेत्र को पुनर्जीवित करना और कृषकों को अतिरिक्त आय का साधन उपलब्ध कराना है।

- **हिंदी राष्ट्र की आत्मा है।**

- महात्मा गाँधी

- **देश का सब से बड़े भूभाग में बोली जाने वाली हिंदी ही राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी है।**

- सुभाष चन्द्र बोस

3. उत्तर पूर्वाचंल के गारो हिल्स में लुप्त होने वाला श्वेत स्वर्ण (कपास)

डॉ. पुनीत मोहन, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. सरवनन एम., वैज्ञानिक
डॉ. सुमन बाला सिंह, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. शिवाजी पालवे, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. विजय नामदेव वाघमारे, विभाग प्रमुख
फसल सुधार विभाग,
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसधान संस्थान, नागपुर

मेघालय राज्य की गारा पहाडिया देसी कपास की रेस सरनम का मूल घर है जो हजारों वर्षों से प्राकृतिक परिवेश में अपना अस्तित्व बनाये हुये है। यह अनोखा श्वेत स्वर्ण (कपास) अपने अतुलनीय गुणों एवं यशोगाथा के लिये विश्व विख्यात है। कपास की रेस सरनम उच्च गूलर प्रतिधारण क्षमता, उच्च गूलर भार (8 ग्राम), उच्च ओटाई प्रतिशत (52 प्रतिशत) एव तीव्र वायु वेग सहनशीलता के लिये कपास जगत में निरतर प्रसिद्ध रही है, परन्तु वर्तमान में कपास की रेस *सरनम* की रूई को शल्य कपास (सर्जिकल काटन), शोषक कपास (एबजारेवेंट काटन), सूक्ष्म जीवाणु रहित कपास (स्टेरिलाइज्ड काटन), सेनेटरी काटन, गाज, इत्यादि के निर्माण में मुख्यतः उपयोग किया जाता है।

गारो पहाडियों के किसानों का रुझान निरतर अन्य नगदी एव उच्च आय की फसलो की ओर सकेत करता रहा और कालांतर में कपास की रेस सरनम की खेती का स्थान अन्य फसले ग्रहण करती रही। फलस्वरूप वर्तमान में कपास की खेती का क्षेत्र सिमट कर 12.3 प्रतिशत रह गया और पश्चिमी गारो पहाड़ियों में कपास की रेस *सरनम* लुप्त होने के कगार में आ गयी। यह सकट वर्तमान में अत्यत संवेदनशील है।

लुप्तप्रायः पादप सपदा के आनुवाशिक ससाधनो के सरक्षण के माध्यम द्वारा आनुवाशिक ह्रास को रोकने हेतु जीव द्रव्य अन्वेषण, सकलन एव सग्रह अभियानों का आयोजन भा.कृ.अनु.प. –केन्द्रीय कपास अनुसधान सस्थान, नागपुर (महाराष्ट्र) द्वारा वर्ष 2000 से 2016 के दौरान आसाम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश एव नागालैन्ड के क्षेत्रों में किया गया तथा गारो पहाड़ियों के विभिन्न क्षेत्रो से कपास की रेस सरनम के 69 नमूनो का संग्रह कर कपास जीन बैंक में सरक्षित किया गया। जैव विविधता में क्षति, लुप्तप्राय पादपों के सकट के कारणो का पूर्वानुमान लगाना, सरक्षण एव जागरूकता वर्तमान की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में उत्तर पूर्वाचल राज्य पादप

आनुवाशिक ससाधन समग्र विविधता के भंडारों से सुसज्जित है। यह समग्र पादप विविधता मनुष्य द्वारा चयन की गयी दीर्घकालीन विकास प्रक्रिया से एकत्रित हुई है। भारत के उत्तर–पूर्वांचल में बादलों का एक निवास स्थान है जिसको मेघालय राज्य के नाम से जाना जाता हैं। मेघालय प्राकृतिक वनस्पति सम्पदा की विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

गॉसीपियम आर्बोरियम रेस : सरनम

भारतीय उपमहाद्वीप में मेघालय उत्तर–पूर्व क्षेत्र में 25´ 5′ उत्तरी अक्षाश से 26´ 10′ उत्तरी अक्षाश व 89´ 47′ पूर्व से 92´ 47′ पूर्व देशान्तर के बीच स्थित है। जनवरी, सन 1972 में मेघालय को पूर्ण राज्य के रुप में स्वीकार किया गया।

वर्तमान में मेघालय में लगभग 949600 हक्टेयर भूमि पर प्राकृतिक वनों का विस्तार है। जलवायु मित्रता के कारण यहाँ पर बांस, इमारती लकडी, जलाऊ लकडी, ऑर्किड, वनौषधि, विविध प्रकार के फल–फूल, इत्यादि प्राकृतिक रूप से उपलब्ध हैं। मेघालय राज्य में पाये जाने वाले लेडी सिलीपर और ब्लू वाँडा पौधे, कीट भक्षी पौध *नेपनथीस खासियाना* अपनी सुन्दरता के लिये विश्व विख्यात है।

मेघालय राज्य का भौगोलिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया गया है पश्चिमी क्षेत्र – गारो हिल्स, केन्द्रीय क्षेत्र – खासी हिल्स और पूर्वी क्षेत्र में जयन्ती हिल्स। उपरोक्त क्षेत्रों को पुनः 11 जिलों में विभाजित किया गया है– क्रमशः पश्चिमी जयंती हिल्स, पूर्वी जयती हिल्स, पूर्वी खासी हिल्स, पश्चिमी खासी हिल्स, दक्षिणी–पश्चिमी खासी हिल्स, रिभोई, उत्तरी गारो हिल्स, पूर्वी गारो हिल्स, दक्षिणी गारो हिल्स, पश्चिमी गारो हिल्स और दक्षिणी–पश्चिमी गारो हिल्स।

उत्तर पूर्वांचल के गारो हिल्स में लुप्त होने वाला श्वेत स्वर्ण (कपास)

उपरोक्त क्षेत्रों में तीन आदिवासी जातियाँ क्रमशः गारो, खासी और जयन्तियाँ निवास करती हैं। आदिवासी किसान समूह में कृषि प्रणाली दो प्रकार की हैं।

स्थायी खेती – पहाडियों की घाटियों या पहाडों के आधारी मैदानी क्षेत्रों में की जाती है। एक ही खेत का बारम्बार खेती के लिये उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार की स्थायी खेती पद्धति में सरसों, तोरिया, आलू, तम्बाकू, तिलहन, शाक–भाजी, इत्यादि की खेती की जाती है।

झूमखेती – इसके अतिरिक्त झूम खेती पद्धति या स्थानान्तर खेती पहाड़ों और पहाड़ों के ढलान के विशेष भाग पर की जाती है। आदिवासी किसान सामान्यतः पहाड़ी ढलान की वनस्पति को साफ करके उसको जलाते हैं। पत्तियाँ और राख को मिट्टी की ऊपरी सतह में मिला देते हैं। इस प्रकार बनाये गये पहाड़ी ढलान खेत पर 2 से 3 वर्ष तक खेती की जाती है। तत्पश्चात आदिवासी किसान दूसरे पहाड़ी ढलान की खोज करके उसकी खेती के लिये चुन लेते हैं और पूर्व के साफ किये हुये खेत एवं झूम खेती में उपयोग किये हुये खेतों को छोड़कर चले जाते हैं। झूम या स्थानान्तरण कृषि पद्धति में आलू, शकर कंदी, कसाबा, कपास, अदरक, बन्दगोभी, फूलगोभी इत्यादि की खेती की जाती है।

नवीन एवं भावी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नये विविध पौधो एवं जननद्रव्य की खोज अत्यन्त आवश्यक है। अनेक वैज्ञानिकों द्वारा संकटापन्न, लुप्त प्रायः पादप संपदा के अनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण के माध्यम द्वारा अनुवांशिक पतन को रोकने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसलिये वर्ष 2000 से 2016 की अवधि में निरन्तर पादप अन्वेषण एवं संग्रह यात्रा अभियानों का आयोजन किया गया। उक्त अभियानों में केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर (महाराष्ट्र) और राष्ट्रीय पादप अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली के क्षेत्रीय संस्थान, उमियम, शिलांग (मेघालय) के वैज्ञानिकों एवं तकनीकी अधिकारियों ने संयुक्त रूप से भाग लिया और पश्चिमी गारो हिल्स (मेघालय) के विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों से विविधता युक्त कपास, चावल, मक्का, तिल, सरसों(सफेद), मिर्च, अदरक, हल्दी, बैंगन, सेम, आलू, शिमलाकंद, लौकी, अरबी, तोरई, भिन्डी, करेला, इत्यादि फसलों के लगभग 165 जननद्रव्य नमूनों का संग्रह किया गया। जिसमें से कपास के 69 नमूनों का संकलन किया गया।

पश्चिमी गारो हिल्स के आदिवासी कृषक देसी कपास की खेती सामान्यतः झूम खेती पद्धति के अनुसार करते हैं। स्थानीय भाषा में देसी कपास की इस सरनम प्रजाति को "खिल" या "खिल" के नाम से पुकारा जाता है।

उपरोक्त अन्वेषण अभियान के अन्तर्गत देसी कपास *गोसीपियम आर्बोरियम* प्रजाति "*सरनम*" के 69 जननद्रव्यों के नमूनों का संग्रह किया गया एवं विविधता हेतु प्रथम अवलोकन किया गया।

देसी कपास गॉसीपियम आर्बोरियम प्रजाति (*सरनम*) में विविधता

1. **पत्ती एवं पुष्पों की संरचना** – पादप अन्वेषण अभियान के समय गारो हिल्स में पाई जाने वाली देसी कपास की "सरनम" प्रजाति में विशेष प्रकार की विविधता का अवलोकन किया गया। पत्तियों के पर्णवृन्त की लम्बाई लगभग 11–18 सें.मी., पर्ण शीर्ष नुकीला, पत्तियों का 5 से 9 भाग में गहराई तक कटा होना, पुष्पों में बाह्य दलपुंज संयुक्त होकर अग्रभाग पूर्ण या आंशिक रूप से आवृत, दलपुंज का आकार सामान्य से अधिक, पुष्प निपत्र आकार में बढ़े होकर पुष्प के आधे से अधिक भाग को पूर्णतया ढक लेते हैं।

पुष्प निपत्र आकार में विविधता

2. **गूलर संरचना** – गूलर का आकार लम्बाई में सामान्य से अधिक, परिपक्व स्फुटित गूलर भार लगभग 7 ग्राम से अधिक तक होना, अधिकतर गूलर 3 कोष्ठक युक्त, परिपक्व गूलर के कोष्ठकों का पूरी तरह 180° कोण तक फैला हुआ होना, बीज सहित कपास का पूर्णतया कोष्ठकों से बाहर आ जाना।

गूलर की संरचना एवं आकृति में विविधता

उच्च गूलर भार एवं उच्च गूलर प्रतिधारणा क्षमता

3. **उच्च गूलर प्रतिधारणा क्षमता** – गारो हिल्स की देसी कपास की *''सरनम''* प्रजाति उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण उपयोगी गुणों से सुसज्जित है। सामान्यतः देसी कपास की अन्य प्रजातियों के स्वभाव में यह देखा गया है कि जब कपास के गूलर परिपक्व होकर स्फुटित होते हैं कुछ ही समय अन्तराल के बाद वातावरणीय तीव्र वायु धारा के कारण कोष्ठको से कपास निकलकर जमीन पर बिखर जाती है जिसके फलस्वरूप कपास में पत्तियों के बारीक टुकड़े एव मिट्टी के कण मिल जाते हैं और कपास की गुणवत्ता को कपडा उद्योग की दृष्टि से निम्न श्रेणी का बना देते हैं परन्तु गारो हिल्स की *''सरनम''* प्रजाति मे यह अवलोकन किया गया है कि तेज वायु एव पौधों के हिलने के उपरान्त भी स्फुटित गूलर से कपास जमीन पर नहीं बिखरती और गूलर के कोष्ठकों से जुडी रहती है। अतः *''सरनम''* प्रजाति में गूलर प्रतिधारण क्षमता (लाक्यूल्स होल्डिंग केपेसिटी) अन्य प्रजातियों की तुलना में उच्च पायी गयी है।

कपास की गुणवत्ता :

गारो हिल्स की *''सरनम''* प्रजाति की कपास श्वेत चमकदार होती है परन्तु रेशे की लम्बाई का कम होना (17 मिमी.), रेशे की सतह में चिकनेपन एव दृढता सामर्थ्य में कमी का होना और रेशों के समूह में एकरूपता की कमी यह पूर्णतया सिद्ध करती है कि वर्तमान में *''सरनम''* प्रजाति की रुई कपडा उद्योग की दृष्टि से निम्न श्रेणी की है और कपडा उद्योग की माँग के अनुसार रेशे के गुणों में परिवर्तित सुधार की आवश्यकता है।

विशिष्ट भौतिक गुण :

''सरनम'' प्रजाति की कपास मे एक विशिष्ट भौतिक गुण यह है कि अपने अन्दर निम्न घनत्व और कम श्यानता (लो–डेन्सिटी और लो–विस्कॉसिटी) के तरल द्रवों को शीघ्रता से अवशोषित कर लेती है। *''सरनम''* कपास की यह अवशोषण सामर्थ्य सामान्य कपास से औसतन तीन गुना अधिक होती है अतः इस प्रकार की कपास का अधिकतम उपयोग शल्य चिकित्सा कपास, सेनिटरी नेपकिन्स और सूक्ष्म जीवाणु रहित कपास के निर्माण मे किया जा सकता है।

देसी कपास सुधार कार्यक्रम :

देसी कपास की *''सरनम''* प्रजाति के जननद्रव्य में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण उपयोगी गुणों जैसे उच्च गूलर भार, उच्च प्रतिधारणा क्षमता (लाक्यूल्स होल्डिग केपेसिटी), पर्णवृंत्त का अधिकतम लम्बा होना, पूर्ण कोष्ठक फैलाव एवं कीट प्रतिरोधी शक्ति, इत्यादि गुणों को स्थानीय देसी किस्मों के साथ प्रजनन कार्यक्रम में पूर्णतया उपयोग में लाया जा सकता है। फलस्वरूप उपरोक्त उपयोगी गुणो का स्थानीय किस्मों के सुधार और नवीन किस्मों के विकास कार्यक्रम में महत्वपूर्ण योगदान हो सकेगा।

भारत में उच्च उपज एव उच्च गुणवत्ता युक्त अमेरिकन कपास की विभिन्न किस्मों का प्रसार बहुत शीघ्रता से हुआ है परन्तु गारो हिल्स के आदिवासी किसानों के द्वारा अमेरिकन कपास की किस्मों को स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि वे अपनी प्राचीन *''सरनम''* सपदा को किसी भी प्रकार से संरक्षित करते जा रहे हैं परन्तु वर्तमान में गारो हिल्स में पाये जाने वाली इस अनोखी श्वेत स्वर्ण संपदा देसी कपास की "सरनम" प्रजाति की अनुवंशिक विविधता को संरक्षित करने के लिये सुव्यवस्थित प्रयासो की आवश्यकता है क्योंकि हरित क्रान्ति के तेज प्रभाव, नूतन कृषि प्रणाली एव प्रसार अथवा बेहतर कृषि तकनीकी के अन्तर्गत कार्यक्रमों के बहुआयामी विकास के कारण स्थानीय देसी कपास की प्रजाति *''सरनम''* के लुप्त होने का संकट वर्तमान में गभीर है।

देसी कपास गॉसीपियम आर्बोरियम रेस : *सरनम* का आर्थिक महत्व

सामान्यतः कपास की देसी प्रजाति एव उनकी किस्मों में यह दोष है कि गूलर के स्फुटन के पश्चात कपास धीरे–धीरे जमीन पर गिर जाती है। उसमें पत्तियों के बारीक टुकड़े एव मिट्टी के कण मिलकर उसकी गुणवत्ता को खराब कर देते हैं। आर्बोरियम

कपास के इस अवगुण को दूर करने हेतु प्रजनन द्वारा दोष निवारण की आवश्यकता थी परन्तु प्रजनन से पूर्व अत्याधिक गूलर धारण क्षमता एवं गूलर भार के स्रोत की आवश्यकता थी। *गॉसीपियम आर्बोरियम* की रेस : *सरनम* में गूलर धारण क्षमता एव गूलर भार अधिकतम पाया गया। रेस : *सरनम* का मूलस्थान आसाम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, मणीपुर है। उत्तर पूर्वांचल मे कपास परिपक्वता के समय वायु की गति तीव्र होती है। अतः प्रकृति ने रेस : *सरनम* के स्वाभाविक गूलर धारण क्षमता को अत्यधिक अनुकूलन प्रदान किया है। केन्द्रीय कपास अनुसधान संस्थान की देसी कपास सुधार शोध कार्यक्रम परियोजना मे प्रजनन हेतु रेस *सरनम* को सम्मिलित किया गया और सी.आय.एन.ए.–316 सुधारित संवर्ध (कल्चर) का विकास किया गया। सरनम कपास के आर्थिक गुण एवं रेशे की गुणता को सारणी : 1 मे प्रस्तुत किया गया है।

परंपरागत हाथ कताई चरखा

परंपरागत हथकरघा से तैयार हो रहा कपड़ा

सारणी : 1 आर्थिक गुण एवं रेशे/तन्तु की गुणक्ता की विविधता सूची

कपास उपज प्रति पौधा (ग्राम)	25.0 से 70.0
गूलर भार(ग्राम)	4.5 से 8.0
ओटाई क्षमता(प्रतिशत)	41.0 से 51.0
कोष्ठक(लॉक्यूल्स) धारण क्षमता (दिन/संख्या)	19.0 से 27.0
प्रति गूलर लॉक्यूल्स संख्या	3.0 से 4.0
रेशे/तन्तु की लम्बाई(मि.मी.)	17.0 से 20.5
रेशे/तन्तु माइक्रोनेयर (माइक्रोग्राम/इंच)	6.0 से 7.0 – अधिक
रेशे/तन्तु की समरूपता अनुपात	48.0 से 57.0
रेशे/तन्तु की दृढ़ता (जी/टेक्स)	15.0 से 19.0

सारणी : 2 भौतिक गुण एवं रासायनिक गुण

रूई मे मोम की मात्रा(प्रतिशत)	0.54
रूई मे सल्फेट राख की मात्रा(प्रतिशत)	1.26
रूई की घुलनशीलता–गर्म पानी में (प्रतिशत)	2.4
रूई की घुलनशीलता–अल्कोहल और बेन्जीन(प्रतिशत)	0.86
होलो सेल्यूलोज (प्रतिशत)	94.5

जैव विविधता, एक वैश्विक सम्पदा है जो वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। दूसरी ओर प्रजातियों व पारितंत्र पर आज जितना खतरा मंडरा रहा है, वैसा कभी नहीं रहा। इन्सानी क्रियाकलापों के कारण प्रजातियों का लोप खतरनाक रफ्तार पर जारी है। जैव विविधता में कमी या क्षति के कारणों का पूर्वानुमान तथा इनके मूल कारणों का पता लगाना वर्तमान की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। जैव विविधता संरक्षण हेतु बुनियादी जरूरत इस बात की है कि इकोसिस्टम्स तथा प्राकृतिक आवासो को अपनी जगह पर संरक्षण दिया जाए और प्रजातियों को उनके प्राकृतिक परिवेश में बरकरार रखा जाए।

राष्ट्रीय पंचांग

'शक सम्वत्' को राष्ट्रीय पंचांग के रूप में भारत सरकार ने मान्यता दी है। इसका प्रथम मास चैत्र है तथा अन्तिम मास फाल्गुन। सामान्य वर्ष 365 दिन का है। सामान्य वर्षों में प्रथम चैत्र 22 मार्च को आता है और लौंद(लीप) वर्षों में 21 मार्च को राष्ट्रीय पंचांग 22 मार्च, 1957 से लागू किया गया है और सरकारी कार्यों में अंग्रेजी पंचांग के साथ–साथ इसका भी उपयोग होता है।

1	चैत्र – अप्रैल	2	वैशाख – मई	3	ज्येष्ठ–जून	4	आषाढ़ – जुलाई
5	श्रावण – अगस्त	6	भाद्रपद– सितम्बर	7	आश्विन– अक्तूबर	8	कार्तिक – नवम्बर
9	मार्गशीर्ष – दिसम्बर	10	पौष – जनवरी	11	माघ – फरवरी	12	फाल्गुन – मार्च

हिंदी पथ सच्चा सरल, भटकन कहीं न मोड़।
हिंदी भाषा देश की, रही देश को जोड़

- भारतीय भाषा ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, कोई विदेशी भाषा नहीं।

  – हिदायतुल्ला खाँ

- कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कडी की तरह सबको मिला–जुला कर रख सके। इसलिए हिंदी को बढ़ावा देना सबका काम है।

  – इंदिरा गाँधी

- घर के आँगन में जैसे तुलसी दल या सुहागन के माथे पर बिंदी। देवता के मुकुट पर जैसे फूल, वैसे ही भारत के भाल पर हिंदी।

  – गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव

4. अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में प्रयोग हेतु *गोसिपियम आरबोरियम* की किस्मों का विकास

डॉ. आर.ए. मीना, प्रधान वैज्ञानिक

डॉ. डी. मोंगा, प्रधान वैज्ञानिक

श्री वीर सिंह, तकनीशियन

श्री पवन कुमार, एस.आर.एफ.

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान,
क्षेत्रीय केन्द्र, सिरसा

गोसिपियम आरबोरियम कपास की 650 विभिन्न किस्मो को वर्ष 2011–12 और 2012–13 में केन्द्रीय कपास अनुसधान, क्षेत्रीय स्टेशन, सिरसा में जाच करके 40 उच्च उत्पादकता वाली किस्मो की छंटनी की गई, जिनकी अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में प्रयोग हेतु आवश्यक मापदण्डो के लिए सिरकोट मुम्बई की प्रयोगशाला में जॉच करवाई गई। इन 40 किस्मो में से 15 किस्मो/हाईब्रिड का अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में उपयोग हेतु सभी आवश्यक गुणों युक्त पाया गया। इनकी गुणवत्ता भारतीय फार्मास्यूटीकल मानको जैसे, उच्च सोखन की क्षमता, पानी को सोख कर रखने की क्षमता, सिकुड़न के समय में कमी तथा बहुत कम राख/अवशेषों की प्रतिशतता के अनुसार मिली। सोखने की क्षमता में सबसे बेहतर हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (1.0 सेकेन्ड), सी आइ एस ए 17–93 (1.1 सेकेन्ड) तथा एच डी 432 (1.1 सेकेन्ड) को पाया गया। पानी को सोख कर रखन की क्षमता में किस्में सी आइ एस ए 310 (28.1 ग्राम), एच डी 123 (27.3 ग्राम) तथा हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (27.1 ग्राम) को अन्य किस्मो से बेहतर आंका गया। सिकुड़न के समय के सदर्भ में एल डी 694 (1.2 सेकेन्ड), सी आई एस ए 17–93 (1.3 सेकेन्ड) तथा हाइब्रिड सी.आई.सी.आर. 2 (1.4 सेकेन्ड) को बेहतर पाया गया। राख के अवशेषों की सबसे कम प्रतिशतता ए सी 3631 (0.25%) एल डी 327 (0.28%), सी आई एस ए 6–256 तथा सी आई एस ए 310 (0.30%) में मिली। सभी 15 किस्मो ने अम्लता एवं लवणता से कोई भी क्रिया नहीं दिखाई, जो कि अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के लिए एक अच्छा गुण है।

इन सभी किस्मो में से सी आई एस ए–6–256 (0.26 ग्राम), आर जी 540 (0.27 ग्राम) तथा एल. डी. 327 (0.28 ग्राम) में सबसे कम जल में घुलनशील पदार्थ पाये गये। उत्पादकता के आधार पर हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (31.7 क्वि. प्रति हैक्टर), सी. आई. एस. ए. 17–93 (30 क्वि. प्रति हैक्टर) तथा सी आई एस. ए 614 (26 क्वि. प्रति हैक्टर), को बेहतर पाया गया। रूई की प्रतिशतता सबसे ज्यादा सी आई एस ए. 17–93 (40.5%), एल डी. 327 (40.4%) तथा सी. आइ. एस. ए. 614 (39.5%) में आँकी गयी। सभी अवशोषक (एबजोरबेन्ट) गुणों, शल्य (सर्जीकल) चिकित्सीय गुणों तथा उत्पादन क्षमता के आधार पर हाईब्रिड सी आइ सी आर 2, सी आइ एस ए 614, एल डी–694 तथा एच डी 432 को किसानों के तथा अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) उद्योगों के लिए लाभदायक पाया गया। अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के लिए उपयुक्त मापदण्डों वाली कपास की किस्में मालूम होने से अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) तैयार करने की वर्तमान प्रक्रिया मे होने वाले खर्च मे कमी की जा सकती है।

गाँवों तथा शहरो मे लोगो की शिक्षा तथा आर्थिक स्तर मे बढोत्तरी होने के कारण अवशोषक (एबजोरबेन्ट) के रूप मे प्रयोग होने वाली कपास तैयार करने वाले उद्योगों मे विगत वर्षो मे अत्याधिक तेजी देखी गयी है। अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) की माग प्रति वर्ष विश्व मे बढ रही है। भारत मे इसकी माग लगभग 2 मिलिबेल (प्रति बेल 170 किग्रा.) आँकी गयी है। भारतीय बाजारों के अलावा विभिन्न देशो जैसे यू. एस., ई.यू. तथा जापान मे भी निर्यात हेतु अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) की मांग बहुत ज्यादा हैं (www.fibre.2fassion.com)। अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) की मांग चिकित्सालयों, नरसिंग होम, दवाखानो, सैनेटरी नैपकिन तथा सौन्दर्य प्रक्रिया में अत्याधिक बढ रही है। देसी कपास (*जी. आरबोरियम*) का छोटा तथा खुरदरा तंतु सामान्यतया अवशोषण की प्रक्रिया हेतु उपयुक्त है परन्तु कपास के रेशे पर मोम, पैक्टिन आदि विद्यमान होने से इनकी अवशोषक (एबजोरबेन्ट) क्षमता बहुत कम होती हैं। कपास को

स्कोरिग क्रिया मे सोडियम हाईड्रोक्साइड से क्रिया द्वारा इसे अवशोषण योग्य बनाया जाता है। वर्ष 2000 के बाद शोधकर्ताओं ने अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) तैयार करने के लिए कई पर्यावरण के अनुरूप तकनीके भी विकसित की है, जिसमें पैक्टीनेस से तैयार किये गये विभिन्न पदार्थो का उपयोग होता है।

अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) चाहे रसायनों से अथवा एंजाइमों की मदद से तैयार की जाये इसमें समय तथा पैसा दोनों की ही अधिक जरूरत होती है तथा इससे प्रदूषण भी होता है। आनुवांशिक रूप से अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) की किस्मों का पता लगाने पर अभी तक बहुत ध्यान भी नहीं दिया गया था। इस कारण अभी तक आनुवांशिक रूप से अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के गुणों युक्त कुछ ही किस्में विकसित हुई है। देसी कपास में अवशोषक (एबजोरबेन्ट) गुणों के होने से यह अध्ययन इस जाति से उपयुक्त किस्मों का पता लगाने के उद्देश्य से किया गया है।

सामग्री एवं कार्य विधि

सी.आई.सी.आर. क्षेत्रीय केन्द्र, सिरसा में 2004–05 में प्रकाशित कपास जर्मप्लाज्म बुलेटिन–1 में अलग–अलग भौगोलिक स्थानों से अलग–अलग आकारिकी की 650 देसी कपास किस्मों में से 40 उच्च उत्पादन क्षमता वाली किस्मों को चुना गया। 2011–12 तथा 2012–13 में इन किस्मों को 5 पंक्तियों तथा 20 डिबिल (गढढों) में 67.5 × 30 सेमी. की दूरी पर (4.80 मी. × 4.05 मी.) में तीन प्रतिरूप में सभी अनुमोदित सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए लगाया गया तथा उन्हें उत्पादकता के आधार पर आंका गया। इन सभी किस्मो तथा कुछ और विकसित किस्मो की रूई को अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के लिए अनिवार्य गुणों की जांच के लिए सिरकोट मुम्बई की प्रयोगशाला में जांचा गया। इन किस्मों की उत्पादन क्षमता एवं सम्बन्धित विभिन्न गुण, तंतु के गुण तथा अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) से सम्बन्धित सभी गुणों को इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

परिणाम तथा विश्लेषण

अभी तक सभी सामान्य कपास की किस्मों से प्राप्त कई किस्मों को अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के लिए प्रयोग में लाने हेतु विभिन्न रसायनों तथा एंजाइमों की मदद से अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में परिवर्तित किया जाता है। इस अध्ययन के आधार पर 40 किस्मों में से सिरकोट मुम्बई की प्रयोगशाला में परीक्षण के बाद 15 किस्मों में ही अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के गुण जैसे, अधिक अवशोषक क्षमता, कम सिकिंग समय तथा बहुत कम राख अवशेष इत्यादि लक्षण पाये गये। इनका तंतु सामान्यतः 20 मिमी. लम्बा तथा 6.4 माइक से ज्यादा खुरदरा पाया गया। छोटे, खुरदरे रेशे वाले कपास की अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में उपयोगिता विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा भी बतायी गयी है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) जो कि चिकित्सालयों में उपयोग की जाती है, का सीधा सम्पर्क आदमी के शरीर से होता है, इसलिए इसकी गुणवत्ता, चिकित्सालयों में मानकों के आधार पर होनी चाहिए। शरीर के लिए कपास कितनी मुलायम है यह जानने हेतु राख की प्रतिशतता एक मुख्य मानक है तथा चुनी हुई किस्मों में राख की मात्रा 5% से कम आंकी गई। सबसे कम ए. सी. 3631 (0.25%), एल.डी. 327 (0.28%), सी आई एस ए 6–256 तथा सी आई एस ए 310 (0.25%) में पायी गई। अवशोषक क्षमता तथा अवशोषक का समय वे गुण हैं जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि कपास कितनी जल्दी किसी चोटिल अंग से नमी सोखेगी एवं उसे साफ कर पायेगी। सभी किस्मों की अवशोषक की क्षमता 1.0 से 1.4 सेकेन्ड के बीच पाई गयी, जो इसके लिए निर्धारित मानक 10 सेकेन्ड से बहुत उपयुक्त है। अवशोषक की क्षमता सबसे अधिक हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (1.0 सेकेन्ड), सी आई एस ए 17–93 (1.1 सेकेन्ड) तथा एच डी 432 (1.1 सेकेन्ड) किस्मो में पायी गयी। पानी अवशोषित का समय इन किस्मो में 1.2 से 1.8 सेकेन्ड के बीच आंका गया जो कि मानक 10 सेकेन्ड से बहुत उत्तम है। इस गुण के लिए एल डी 694 (1.2 सेकेन्ड) सी आई एस ए 17.93 (1.3 सेकेन्ड) तथा हाइब्रिड सी आई सी आर 2 (1.4 सेकेन्ड) किस्में अच्छी पायी गयी। पानी को अवशोषित करने की क्षमता भी अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) का एक मुख्य गुण है तथा मानक के अनुसार 23 ग्राम पानी प्रति ग्राम कपास को सोखना चाहिए। सी आई एस ए 310 (28.1 ग्राम), एच डी 123 (27.3 ग्राम) तथा हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (27.1 ग्राम) में यह गुण बाकी किस्मों से अच्छा पाया गया।

औषिधि निर्माता के मानकों के अनुसार कपास का पी.एच. सामान्यतः 5–8 के बीच होना चाहिए ताकी त्वचा पर किसी प्रकार की जलन ना हो। इन सभी चयनित किस्मों की अम्ल अथवा क्षार के साथ किसी भी तरह की प्रक्रिया नहीं देखी गई है, जो कि एक बेहतर अवशोषक कपास का गुण है। सभी किस्मो मे जल में घुलनशील तत्व भी, मानक 0.5% से कम पाये गये। सी आई एस ए 6–256 (0.26 ग्राम), आर जी 540 (0.27 ग्राम) तथा एल डी 327 (0.28ग्राम) किस्मों में जल में घुलनशील तत्व सबसे कम पाये गये। शोधकर्ता मोकाटे एट आल ने भी वर्ष 2011 मे इन्हीं मानकों को ध्यान में रखकर एम.पी.के.वी. राहूरी में फुले धनवन्त्री नामक किस्म विकसित की।

इन किस्मो मे मोनोपोडिया की संख्या सबसे ज्यादा, एल डी 694, पी ए–532 तथा सी आई एस ए 17–93 मे पायी गयी तथा सिम्पोडिया जिनमे कपास के गूलर लगते है, गुलरो की संख्या आर जी 540 (22.3), सी आई एस ए 6–295 (21.9) तथा सी आई

सी आर 2 (21.0) किस्मों में ज्यादा मिली। गूलरों की संख्या के अनुसार हाईब्रिड सी.आई.सी.आर. 2 (52.0), सी आई एस ए 17–93 (45.0) तथा आर जी 540 (44.8) किस्में अन्य किस्मों से बेहतर पायी गयी। गूलरों का वजन सबसे ज्यादा हाईब्रिड सी. आई.सी.आर. 2 (2.9 ग्राम), एच डी 432 (2.5) और एलडी–694 (2.5 ग्राम) किस्मों में पाया गया। पैदावार क्षमता हाईब्रिड सी आई सी आर 2 (31.7 क्वि. प्रति हैक्टर) में सभी अन्य किस्मों से ज्यादा पाई गयी, इसके अलावा सी आई एस ए 17–93 (30.0 क्वि. प्रति हैक्टर) और सी.आई.एस.ए. 614 (26 क्वि. प्रति हैक्टर) किस्मों की उत्पादकता भी अन्य किस्मों से बेहतर आँकी गयी। जी. ओ. टी. की सबसे ज्यादा प्रतिशतता सी आई एस ए 17–93 (40.5%), एल डी 327 (40.4%) तथा सी आई एस ए 614 (39.5%) में और बीज इन्डेक्स एच डी 123 (6.8 ग्राम), सी आई एस ए 6–295 (6.1 ग्राम) तथा सी आई एस ए 6–256 (6.1 ग्राम) किस्मों में ज्यादा मिला। मीना एवं सहयोगियों ने भी वर्ष 2013 में देसी कपास की कई अधिक उत्पादकता वाली किस्मों की जानकारी प्रकाशित की थी, परन्तु इनकी अवशोषक (एबजोरबेन्ट) के रूप में प्रयोग सम्बन्धित गुणों की जांच नहीं की गयी, भविष्य में इन किस्मों की भी अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के रूप में प्रयोग हेतु गुणों की जांच की जा सकती है।

अतः उक्त जानकारियों के आधार पर बेहतर देसी किस्में जो अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) के रूप में प्रयोग हो सकें, हाईब्रिड सी आई सी आर 2, सी आई एस ए 614 तथा एच डी 432, को किसानों को लाभ पहुँचाने वाली तथा अवशोषक (एबजोरबेन्ट) कपास उद्योगों में उपयोग के लिए उत्तम पाया गया। इन किस्मों के प्रयोग से सामान्य कपास को अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में बदलने हेतु होने वाले अतिरिक्त खर्च, समय तथा इस प्रक्रिया में प्रयोग होने वाले रसायनों की वजह से होने वाले प्रदूषण से बचा जा सकता है।

तालिका 1 : चयनित अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) किस्मों के तंतु के गुण

क्रमांक	किस्मों के नाम	2.5 प्रतिशत स्पान की लम्बाई	समानता अनुपात	माइक्रोनेयर
1	सी आई एस ए 17–93	18.5	51	6.9
2	एच डी – 432	19.1	52	6.8
3	पी ए – 532	18.8	52	7.0
4	सी आई एस ए 6 – 295	20.3	49	6.4
5	सी आई एस ए 6 –256	15.9	52	6.6
6	आर जी –540	17.8	52	6.4
7	एल डी–327	18.5	52	6.9
8	सी आई एस ए – 294	18.1	52	7.7
9	सी आई एस ए – 405	17.8	52	7.2
10	ए सी – 3631	18.4	52	6.0
11	सी आई सी आर 2	19.2	51	8.0
12	सी आई एस ए 310	19.4	52	6.9
13	सी आई एस ए –614	18.0	52	6.9
14	एल डी–694	22.3	50	6.9
15	एच डी–123	20.4	52	6.9

तालिका 2 : अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) में प्रयोग हेतु *गॉसिपियम आरबोरियम* की किस्मों के गुण

किस्मों के नाम	राख (प्रतिशत)	नमी (प्रतिशत)	अवशोषकता (सेकेन्ड)	सिकुड़ने का समय (सेकेन्ड)	पानी सोखकर रखने की क्षमता (ग्राम/ग्राम कपास)	अम्लता एवं लवणता	जल में घुलनशील पदार्थ
सी आई एस ए 17–93	0.43	7.2	1.1	1.3	25.1	–	0.31
एच डी –432	0.32	6.9	1.1	1.5	25.1	–	0.32
पी ए –532	0.39	6.8	1.3	1.5	24.8	–	0.34
सी आई एस ए 6–295	0.42	7.0	1.3	1.5	23.5	–	0.34
सी आई एस ए 6–256	0.30	6.9	1.4	1.8	24.6	–	0.26
आर जी –540	0.33	6.3	1.2	1.8	26.7	–	0.27
एल डी –327	0.28	6.2	1.2	1.5	24.6	–	0.28
सी आई एस ए 294	0.32	6.5	1.3	1.5	25.7	–	0.29
सी आई एस ए –504	0.32	6.3	1.3	1.7	25.8	–	0.30
ए सी –3631	0.25	6.4	1.2	1.5	25.1	–	0.31
सी आई सी आर 2	0.38	–	1.0	1.4	27.1	–	–
सी आई एस ए 310	0.30	–	1.3	1.7	28.1	–	–
सी आई एस ए –614	0.36	–	1.4	1.7	24.9	–	–
एल डी–694	0.37	–	1.2	1.2	25.4	–	–
एच डी–123	0.39	–	1.4	1.7	27.3	–	–

तालिका 3 : चयनित अवशोषक कपास (एबजोरबेन्ट कॉटन) किस्मों के उत्पादकता गुण

किस्मों के नाम	मोनोपोडिया की संख्या	सिम्पोडिया की संख्या	गूलरों की संख्या	गूलरों का वजन (ग्राम)	पैदावार क्षमता (क्वि. प्रति हेक्टेयर)	जी. ओ. टी.	बीज सूचकांक (ग्राम)
एल डी –327	4.7	20.9	39.0	2.4	22.8	40.4	5.6
आर जी –540	4.7	22.3	44.8	2.2	24.0	36.2	6.0
सी आई एस ए 6–256	4.7	20.8	39.4	2.4	23.5	37.6	6.1
सी आई एस ए 294	4.5	20.4	40.7	2.2	18.3	36.0	6.0
सी आई एस ए –504	4.4	19.8	41.3	2.2	21.8	37.5	6.0
पी ए –532	6.6	19.5	39.5	2.2	18.8	36.6	6.0
सी आई एस ए 6–295	4.3	21.9	39.5	2.4	24.0	36.8	6.1
सी आई एस ए 17–93	6.0	20.6	45.0	2.4	30.0	40.5	6.0
ए सी –3631	4.1	18.1	36.0	2.2	21.8	36.0	5.8
एच डी –432	5.3	19.9	39.7	2.5	24.0	37.7	5.9
सी आई सी आर 2	5.0	21.0	52.0	2.5	31.7	38.4	4.7
सी आई एस ए 310	5.0	17.5	40	2.4	20.2	36.5	5.8

किस्मों के नाम	मोनोपोडिया की संख्या	सिम्पोडिया की संख्या	गूलरों की संख्या	गूलरों का वजन (ग्राम)	पैदावार क्षमता (क्वि. प्रति हेक्टेयर)	जी. ओ. टी.	बीज सूचकांक (ग्राम)
सी आई एस ए –614	4.7	18.7	45	2.4	26.0	39.5	5.7
एल डी–694	8.3	15.7	50	2.5	24.8	38.0	5.8
एच डी–123	4.4	13.3	41.0	2.0	19.0	34.4	6.8
सी डी	1.2	2.6	N/A	0.3	1.02	1.4	0.7
सी वी	13.8	7.2	7.6	6.7	6.47	2.1	6.6

- पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

- कबीर

- इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है, मैं दे दूं और फिर कुछ लूं, इतना ही सरल झलकता है।

- जयशंकर प्रसाद

- नयनों ने उर को कब देखा, हृदय न जाना दृग का लेखा, आग एक में और, दूसरा सागर ढुलकाता है। घुला यह वह निखरा आता है।

- महादेवी वर्मा

- रति का क्रंदन सुन आँसू से तुमने ही तो दृग धोए थे।कालिदास सच–सच बतलाना रति रोई या तुम रोए थे।

- नागार्जुन

- प्यार में गुजर गया जो पल वह पूरी एक सदी से कम नहीं है, जो विदा के क्षण नयन से छलका अश्रु वो नदी से कम नहीं।

- नीरज

- खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वाकी धार। जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार।

- खुसरो

- इश्क पर जोर नहीं, है ये वो आतिश गालिब, कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।

- गालिब

5. भारत में कपास के किसानों की आय बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकियाँ और रणनीतियाँ

- डॉ. एम.वी. वेणुगोपालन, प्रधान वैज्ञानिक
- डॉ. डी. ब्लेज़, विभागप्रमुख
- डॉ. ए.आर. रेड्डी, प्रधान वैज्ञानिक

फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

यदि बाजार की मांग सतत स्थिर बनी रहती है तो किसान की आय को बढ़ाने के लिए या तो उपज में बढोत्तरी कर अथवा उत्पादन की लागत को कम करें अथवा दोनों तरीके अपनाएँ। उपज बढाने अथवा उत्पादन लागत में कमी करने के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकियों और रणनीतियो की आवश्यकता होती है। वर्तमान में, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, अमेरिका, और चीन, सहित कुछ विकसित देशों में उपलब्ध वे सभी कपास प्रौद्योगिकियाँ और कृषि–ससाधन भारत के लिए भी उपलब्ध हैं। भारत में 10 से 13 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल के 10% से भी अधिक में बॉलगार्ड–II बीटी सकरों की खेती हो रही है। यद्यपि, नवीनतम प्रौद्योगिकियों के अपनाने के बावजूद पिछले एक दशक से रुई की औसत उपज 500 किग्रा रुई /हे. पर स्थिर है।

भारत में कम उपज के कारण

कारक 1 : लंबी अवधि के संकर कपास

कपास की फसल को जल तथा नत्र की अपनी कुल आवश्यकता का 80% से भी अधिक अपने पुष्पन तथा फलन काल में आवश्यक होता है। फसल की इस महत्वपूर्ण अवस्था में पानी तथा पोषकतत्वों की कमी होने पर उपज में उल्लेखनीय कमी आती है। लंबी अवधि के संकरों में फलन अवस्था सबसे लंबी अर्थात 80 से 160 दिनो या इससे अधिक होती है। विकसित देशों में अवधि 60 से 100 दिनों की होती है। अधिकाश संकरों में गूलर निर्माण मानसून की समाप्ति के समय ही होता है। पुष्पन तथा फलन काल (60–120 दिवस) के आखिरी समय में विशेषत: बारानी परिस्थिति में फसल को पर्याप्त नमी तथा पोषकतत्व प्राप्त नहीं होते हैं। भारत में कपास का क्षेत्रफल 60% बारानी परिस्थिति में है। इस प्रकार, लबी अवधि के अधिकाश संकर बारानी खेती के लिए अनुपयुक्त हैं। फसल की लबी अवधि के कारण फसल पूरे फसलकाल में बहुत से नाशीकोटों के लिए संवेदनशील रहती है, विशेषरूप से गुलाबी सूंडी जो फसलकाल में देरी से आने वाला नाशीकोट है।

कारक 2 : निम्न पैदावार सूचकांक

भारत में विकसित दीर्घ अवधि के किस्मों में कम उपज के लिए जिम्मदार दूसरा कारण है इनका निम्न पैदावार सूचकांक। लंबी अवधि उच्च आंज युक्त संकर फसल में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने से सस्य सूचकाक 0.2 से 0.5 रहता है। अधिक उपज लेने वाले देशों में यह सूचकाक 0.5 से 1.0 के मध्य रहता है। अधिक वानस्पतिक वृद्धि के साथ निम्न सस्य सूचकाक के कारण रासायनिक उर्वरकों की एक बडी मात्रा व्यर्थ जाती है जिसके परिणामस्वरूप उपज में कमी आती है।

कारक 3 : कम ओटाई क्षमता जी.ओ.टी.

भारतीय कपास की ओटाई क्षमता कम (32–44 प्रतिशत) होती है। विकसित देशों में यह क्षमता 38–44 प्रतिशत होती है। उदाहरणार्थ, 1000 किग्रा. कपास से भारत में 330 किग्रा. ततु (रुई) मिलेगी, जबकि दूसरे देशों में 1000 किग्रा. कपास से 390 किग्रा. ततु प्राप्त होगा। इस प्रकार, भारत में ततु की प्राप्ति (उपज) कम है। भारतीय कपास में निम्न जी.ओ.टी. का कारण हो सकता है प्रति पौधा अधिक गूलर प्राप्ति पर जोर देना, जिसके कारण जी. ओ.टी. और ततु शक्ति, विशेषकों की उपेक्षा का कारण बना रहा।

कपास की उपज और किसानों की आय में बढ़ोत्तरी के लिए रणनीतियाँ

1. देसी कपास की क्षमता का उपयोग करना

भारत के भावी कपास कार्यक्रमों में एक बड दीर्घकालिक सकारात्मक अधिप्रभाव उत्पन्न करने के लिए देसी किस्मों में बहुत

बडी क्षमता निहित है। दुर्भाग्य से, देसी कपास में सर्वश्रेष्ठ अनुसंधान परिणामों में से कुछ देश में चल रही कपास के बीटी संकरों की लहर के दौरान ही प्राप्त किए गए। देसी कपास की सभी सुधारित किस्में बीटी कपास के प्रवेश के समय ही जारी (अनुमोदित) की गई हैं। देसी कपास में हुए सुधार इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे कम उत्पादन लागत के साथ उच्च उपज का लाभप्रद व दीर्घकालिक विकल्प प्रदान करते हैं। इसके साथ ही, विगत 2–3 वर्षों से संपूर्ण देश में देसी कपास की मांग निरंतर बढ रही है, विशेष रूप से उत्तरी भारत में। देसी कपास की कम अवधि की किस्में उच्च ओटाई क्षमता (>40%) और श्रेष्ठ गुणता के साथ सभी वर्गों (कम, मध्यम तथा अधिक लंबे तंतु) में तथा सभी उद्देश्यों (शल्यक, शोषक, डेनिम गद्दा, तोशक, आदि) के लिए उपलब्ध हैं। इसके कताई क्षमता 60–80 काउंट की होती है। बारानी और सिंचित क्षेत्रों में, सामान्य देखभाल के साथ देसी कपास की किस्मों की उपज बीटी कपास के मुकाबले आसानी से अधिक ली जा सकती है।

2. सघन रोपण प्रणाली (एच.डी.पी.एस.) के अंतर्गत नई बीटी किस्मों को लोकप्रिय बनाना :

केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा सघन रोपण प्रणाली (एच.डी.पी.एस.) के एक नये विचार को सामने लाई है, जिसमें बारानी खेती प्रणाली, विशेष रूप से, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में रिकॉर्ड पैदावार करने की क्षमता है। सघन रोपण प्रणाली में सुगठित पौध–प्रकार के साथ बौनी किस्मों की आवश्यकता होती है जिनमें प्रति पौधा में 6 से 8 गूलर हों। इससे पौधों में सूर्यप्रकाश तथा पोषकतत्व व जल जैसे दूसरे संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं होगा। संस्थान द्वारा वर्ष 2008 से सघन रोपण प्रणाली (1,50,000 पौधे प्रति हेक्टर से भी अधिक) के लिए उपयुक्त किस्मों की पहचान के लिए कार्यक्रम का प्रारंभ किया। खेत परीक्षणों में बीटी किस्मों और देसी किस्मों सघन रोपण प्रणाली के अंतर्गत लगातार अधिक उपज रिकार्ड की गई। नई आई.एन.एम., आई.डब्लू.एम., आई.आर.एम. तथा आई.पी.एम. प्रौद्योगिकियों के साथ सघन रोपण प्रणाली के अंतर्गत आदानों के दक्षतापूर्ण उपयोग, उत्पादन की कम लागत तथा उच्च उपज के साथ भारतीय कपास का भविष्य उज्जवल है। विगत 2–3 वर्षों से के.क.अनु.सं., नागपुर द्वारा शुरूआत में प्रारंभ किए गए प्रयोगों से पता चला कि पी.के.वी.–081, ए.डी.बी.–39, एन.एच–630 तथा सूरज, जैसी, किस्में सघन रोपण प्रणाली के लिए उपयुक्त हैं। उसी प्रकार सी.आई.एन.ए –404, जे.के –5 और ए.के.ए –7 जैसी देसी किस्मों में 2.22 लाख पौधे/हेक्टयर (45×10 सेमी) दर पर उच्च उपज प्राप्त की गई।

3. सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों का प्रदर्शन :

विभिन्न जैव–भौतिक स्थितियों के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन विधियों/पद्धतियों का विकास और प्रदर्शन होना चाहिए और इसे बडे पैमाने पर अपनाना चाहिए। वैश्विक सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों से लिए गए विचारों पर आधारित 10 नए संघटकों की सूची यहां दी जा रही है। इन्हें यदि मानक परिशुद्ध पद्धतियों के साथ समन्वित किया जाये तो इनमें भारत में कपास उत्पादन बढ़ाने की क्रांतिकारी क्षमता है।

1. नई कम अवधि की किस्म : अधिक तंतु लंबाई वाली देसी (*गॉसीपियम आर्बोरियम*) और बीटी–किस्में
2. सघन रोपण प्रणाली और लघु–सघन अगेती प्रतिरूप
3. कठोर मृदा अधःस्तर को तोडने के लिए अवमृदा जुताई
4. सूक्ष्म रोपण, उत्तर–दक्षिण अभिमुखी कतारों की दिशा और नर्सरी में विकसित पौधे
5. प्लास्टिक पलवार (मलचिंग) के नीचे ड्रिप सिंचाई एवं जल प्रबंधन
6. खरपतवार रहित क्यारी पद्धति
7. संरक्षण जुताई, आच्छादन फसलें, फसल अवशेष पुर्नचक्रण अथवा पलवार
8. पादप वृद्धि नियामक रसायनों की मदद से कलियों एवं गूलरों का अवधारण
9. फसल आच्छादन प्रबंधन
10. सूतथ्य/स्थार्य रासायनिक आदानों का प्रबंधन

4. अति लंबे तंतु इ.एल.एस. कपास के उत्पादन आधार का विस्तार

सूक्ष्म स्तर पर प्रत्येक राज्य के संभावित क्षेत्रों की पहचान, इ.एल.एस. कपास किस्मों के समयावधि सीमा को बढाना, बडे पैमाने पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का आयोजन, बीज उत्पादन श्रृंखला को मजबूत करना, एफ.एफ.एस. द्वारा किसानों का प्रशिक्षण, अनुबंध खेती को प्रारंभ करना, आदि उत्पादन आधार का विस्तार करने के लिए आवश्यक हैं। उपयुक्त कृषि तकनीकों, उदाहरणार्थ, जीनप्रारूप (*जी. बार्बडेंस, जी. हिर्सुटम* और एच बी संकरों), उचित रोपण समय–योजना, अनुकूलतम पादप संख्या तथा फसल ज्यामिति, विवेकपूर्ण तथा संतुलित उर्वरक/फर्टिगेशन अनुप्रयोग, सुधारित तथा स्थिर उच्च उपज क्षमता वाले संवर्धों/संकरों का प्रयोग, नाशीकीटों, रोगों तथा खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण, प्रभावी सिंचाई समय–सारिणी एवं उचित जल संग्रहण व प्रबंधन, आदि के द्वारा अति लंबे तंतु वाली कपासों की उपज में वृद्धि की जा सकती है।

5. प्रौद्योगिकी का प्रसारण : 'चॉइस-मेल' एस एम एस और परामर्शी

फसल की उपज और आय में बढोत्तरी के लिए भारतीय कपास अनुसंधानकर्ताओं ने श्रेष्ठ प्रौद्योगिकियों का विकास किया है। जब, इन प्रौद्योगिकियों को श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पद्धतियों

(डीइस–मेल' एस एम एस और परामर्शी) द्वारा हस्तांतरण करने की सख्त जरूरत है। कपास की खेती की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान सर्वश्रेष्ठ प्रौद्योगिकी पद्धतियों के उत्कृष्ट समेकित पैकेज को कालक्रमानुसार चरणबद्ध तरीके से अपनाने के लिए विस्तार समर्थन को मजबूती प्रदान करने की आवश्यकता है।

6. कपास के डंठलों का मूल्य-वर्धन : किसान की आय बढ़ाने के लिए रणनीति

कपास में लगभग 30 मिलियन टन कपास के डंठलों का वार्षिक उत्पादन होता है जिसके सिर्फ 10% का ही वाणिज्यिक उपयोग हो पाता है। खेत से कपास के डंठलों को एकत्र करना और संभालने का बोझ इसके औद्योगिक अनुप्रयोग में इस्तेमाल करने को सीमित करता है। कपास के डंठलों से ब्रिकेट तथा पैलेट (गोली) बनाकर बहुत से उद्योगों में बाइलर ईंधन, ईंट के भट्टों, गैसीकरण, आदि में प्रयोग किया जा सकता है।

कपास के डंठलों का सकल कैलोरिफिक वैल्यू 4000जी.सी.वी. है और जिसका अक्षय उर्जा उत्पादन में उपयोग कर सकते हैं। ब्रिकेटिंग और पैलटिंग करने पर प्रति टन डंठल से रू. 2000/– आय प्राप्त होगी। इन डंठलों के खेत पर उपयोग को बढ़ावा देने के लिए जैवसंवर्धित कंपोस्ट निर्माण तथा ऑइस्टर मशरूम उत्पादन जैसी प्रौद्योगिकियों का विकास भा.कृ.अनु.प–सिरकॉट द्वारा किया गया है। मशरूम उत्पादन के लिए यदि कपास के डंठलों का प्रयोग किया जाए तो प्रति किग्रा. कपास के डंठलों से लगभग 300 से 500 ग्रा. ऑइस्टर मशरूम का उत्पादन होता है जिसकी बाजार कीमत रू. 80 से 120/– प्रति किग्रा. होती है। किसानों द्वारा अपने खेत से अतिरिक्त आमदनी प्राप्त करने के लिए इन्हें उद्यमिय गतिविधि के रूप में लिया जा सकता है।

अबे, सुन बे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटिलिस्ट

— निराला

- **हम में ही थी न कोई बात, याद न तुमको आ सके**
  तुमने हमें भुला दिया, हम न तुम्हे भुला सके...।

- हफीज जालंधरी

- **किसी से मेरी मंजिल का पता पाया नहीं जाता**
  जहाँ मै हूँ फरिश्तों से वहाँ जाया नहीं जाता।

- मखमूर देहलवी

- **जो लोग जान बूझ के नादान बन गए**
  मेरा ख्याल है कि वो इन्सान बन गए...।

- अदम

6. कपास की जड़ों का महत्व : पौधे के विकास और उपज में कैसे बढ़ाये

डॉ. जयंत मेश्राम, प्रधान वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग
डॉ. सुनील महाजन, प्रधान वैज्ञानिक, फसल सुधार विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

भारत की निरंतर बढती हुई आबादी के लिए भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन बढाना और उसे टिकाऊ बनाये रखना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया है। जाहिर है कि फसलोत्पादन बढाने के लिए कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करना लगभग असभव है। अब प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के अलावा हमारे पास अन्य कोई विकल्प शेष नहीं है। कृषि उत्पादन बढ़ाने में सिंचाई के बाद उर्वरक एक महत्वपूर्ण आदान है। भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में फसलोत्पादन में 50 प्रतिशत बढ़ोत्तरी केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से हुई है। दरअसल, हरित क्रान्ति के समय हमारी मृदाएँ प्राकृतिक पोषक तत्वों से परिपूर्ण थी। फलस्वरूप उत्पादन में आशातीत सफलता मिली, परन्तु उत्पादकता बढ़ाने के कारण मृदाओं के उर्वरा स्तर में निरन्तर कमी होती गयी। परिणाम स्वरूप पिछले दशक से अनुभव किया जा रहा है कि मुख्य फसलों के औसत उत्पादन में ठहराव की स्थिति आ गयी है। मृदा अकार्बनिक कणों, सडे हुए कार्बनिक पदार्थो, वायु एवं जल का मिश्रण होती है। मृदा के भौतिक गुण, मृदा के उपयोग तथा पादप वृद्धि के प्रति इसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। ये गुण पौधों की जडों को मृदा में प्रवेश कराने, जल निकास एवं नमी धारण आदि में सहायक होते हैं। पादप पोषकों की उपास्थिति भी मृदा की भौतिक दशाओं से सम्बन्धित होती है लेकिन पिछले दशक में मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में तीव्र गिरावट हुई है।

इसके विपरीत जब हरित क्रांति के 50 से 60 वर्ष बाद आज फसल उत्पादन में लागत कई गुणा बढ गयी है और मृदा से अनेक तत्वों का पतन हो चुका है। कार्बनिक पदार्थ की मात्रा तो काफी निचले स्तर पर पहुँच चुकी है। साथ ही साथ प्राकृतिक ससाधनों (विशेष रूप से भू-जल) का दोहन भी अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है। अतः मृदा की दशा और प्राकृतिक ससाधनों के समुचित उपयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। किसान आजकल केवल ज्यादा फायदे वाली फसल प्रणाली के जाल में उलझा हुआ है, वह चाह कर भी मृदा का पोषण करने वाली दूसरी फसलों का चयन नहीं कर पाता, क्योंकि यह फसलें रोगों, कीट, पतंगों और आज के जलवायु परिवर्तन की दृष्टि में भी अतिसंवेदनशील है। खनिज उवरकों को अधिक मात्रा तथा रासायनिक कीटनाशक दवाओं का बोझ मृदा की जैविक शक्ति पर पड़ रहा है। आज किसान ने गोबर खाद डालना कम कर दिया है। यदि पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व मिलेगा, तो पौधा की प्रतिरोधक क्षमता का विकास होगा। सफेद जड़ों के विकास पर ही पौधो की गुणवत्ता स्पष्ट रूप से आप देख सकते हैं। रासायनिक खाद के एक और दुष्प्रभाव है, कार्बन और नाइट्रोजन अनुपात के बिगडने से उत्पादन बिगडता जा रहा है। अतः जरूरी है जीवांश (ह्यूमस) बढाने के कार्य निरन्तर खेतों में होना चाहिए, जिससे कृषि मित्र कीटों, जीवों की संख्या और सफेद जडों की सख्या बढेगी। यदि यह कार्य अमल में लाते है, तो आने वाले समय में 20-30 प्रतिशत उत्पादन अवश्य ही बढेगा। पौधों के द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण में जड की प्रमुख भूमिका होती है। पौधों की संपूर्ण जड के नमूनों का एकत्रित करने में होने वाली जटिलता के कारण शोधकर्ता पौधों के इस महत्वपूर्ण भाग के अध्ययन में रूचि नहीं लेते है। पौधों के अन्य भाग के अपेक्षा जड का अध्ययन अधिक खर्चीला भी होता है।

कपास की अधिक पैदावार के लिए भिन्न-भिन्न तरहों की मृदा में जडों का विकास व फैलाव उचित होना चाहिए। जडों के माध्यम से पोषक तत्वों का अवशोषण पौधे को मिलता है। इसलिए जडों के विकास व कपास की पैदावार में सीधा संबध है। भूमि की उपरी सतह पर जल की उचित निकास न होना, अनुपजाऊ गुण,

संतुलित पोषक तत्वों, मिट्टी की गहराई व उर्वरकता को ध्यान में न रखना कपास की कम पैदावार के मुख्य कारण है। इसके साथ–साथ कपास की जडों का उचित विकास व फैलाव न होना भी पैदावार को कम करता है। आमतौर पर कपास की जड़े 50–60 दिनों में 100 सेंटीमीटर की गहराई तक जाती है सभी जड़े उर्वरक ग्रहण नहीं करती, मोटी जड़े तो पौधो के सहारे और पानी व पौषकतत्व के घोल के परिवहन का काम करती है।

देश की मृदाओं में जीवांश कार्बन का स्तर मात्र 0.17 ही रह गया है जिसके फलस्वरूप मृदा स्वास्थ्य (भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों) जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादन क्षमता में ठहराव तथा अनेक क्षेत्रों में उत्पादकता में गिरावट देखी जा रही है। निरंतर सघन खेती अपनाने, उर्वरकों के असंतुलित उपयोग के साथ–साथ जैविक खाद के कम इस्तेमाल के चलते देश के अनेक क्षेत्रों की मिट्टियों में अनेक पोषक तत्वों की खासी कमी देखने को मिल रही है। देश के ज्यादातर क्षेत्रों में मिट्टी की सेहत और उसकी उर्वरता में तेजी से गिरावट आ रही है। भारत की करीब 90 फीसदी मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी है जबकि 80 फीसदी में फॉसफोरस और 50 फीसदी में पोटेशियम की कमी है। अन्य पोषक तत्वों में सल्फर, जिंक, मैंगनीज, बोरान की कमी काफी चिंताजनक है। वर्तमान में बिगडते मृदा स्वास्थ्य गंभीर चिंता का विषय है जिसके चलते देश में कृषि संसाधनों का अधिकतम उपयोग नहीं हो पा रहा है।

नाईट्रोजन : पौधों के स्वस्थ विकास एवं संतुलित पोषण के लिए प्रमुख रूप से 17 तत्वों की आवश्यकता होती है जिनमें से कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन पौधे, वायु एवं जल से ग्रहण करते हैं, शेष 14 तत्वों को पौधे मृदा से ग्रहण करते हैं। इनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश प्रमुख तत्व हैं। पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए इन तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। कैल्शियम, मैगनीशियम एवं सल्फर द्वितीयक यानी गौण पोषक तत्व हैं। प्रमुख पोषक तत्वों की अपेक्षा इन तत्वों की कम मात्रा में आवश्यकता होती है। आयरन, मैंगनीज, कॉपर, जिंक, बोरान, मोलिब्डिनम, क्लोरीन तथा निकल सूक्ष्म पोषक तत्व हैं जिनकी पौधों को अत्यन्त कम मात्रा में आवश्यकता होती है। परन्तु फसल उत्पादन क्षमता को प्रमुख तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म तत्व भी उतना ही प्रभावित करते हैं। यदि मिट्टी से पोषक तत्व निकलते रहें और उनकी आपूर्ति न की जाए तो मिट्टी की उर्वरता का ह्रास अवश्य ही सम्भव है। मृदा की उर्वरता को उसमें उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा तथा उसके भौतिक, रासायनिक तथा उसके जैविक गुण प्रभावित करते हैं। यदि किसी पोषक तत्व की मृदा में कमी हो जाती है तो उस पर उगने वाले पौधों का जीवन–चक्र पूरा नहीं हो पाता है। यही नहीं पौधे पोषक तत्वों की न्यूनता तथा अधिकता दोनो से प्रभावित होते है जिससे उनकी उत्पादकता घट जाती है। कृषि भूमि की सेहत और खाद एवं उर्वरकों के बारे में पर्याप्त जानकारी न होने के चलते किसान आम तौर पर नाइट्रोजन का अत्याधिक प्रयोग करते हैं, जो कि न सिर्फ कृषि उत्पादों की गुणवत्ता के लिए खतरनाक है बल्कि इससे भूमिगत जल में नाइट्रेट की मात्रा भी बढ जाती है। इससे पर्यावरणीय समस्याएँ भी पैदा होती हैं। किसान जब संतुलित मात्रा में खाद डालने लगेंगे, तो उनके खेतों की मिट्टी खराब नहीं होगी, फसलों की पैदावार में पर्याप्त इजाफा होगा, साथ ही किसानों की कमाई भी बढेगी। इससे न केवल किसान, बल्कि आम जनता भी लाभान्वित होगी क्योंकि फसलों की ज्यादा पैदावार महंगाई को कम करने में भी सहायक होगी। मिट्टी में जैविक पदार्थ (कार्बन) की मात्रा के आधार पर जैविक खाद की सिफारिश की जाती है। जैविक खाद से मिट्टी की भौतिक संरचना व गठन बना रहता है। जैविक कार्बन के आधार पर उपलब्ध नत्रजन की गणना कर, नत्रजन उर्वरको की सिफारिश की जाती है। नत्रजन का प्रयोग फसल में दो से तीन बार करना अच्छा होता है। इसी तरह भूमि में उपलब्ध फास्फोरस का विश्लेषण कर फॉस्फोरस उर्वरकों की सिफारिश की जाती है। फास्फोरस उर्वरक उपयोग पौधों की जडों की वृद्धि एवं फूल तथा बीजों के निर्माण के लिए आवश्यक होता है। फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों का पौधे की जड क्षेत्र के नीचे बुवाई के समय कतारों में प्रयोग करना चाहिए।

फॉस्फोरस : यह न्यूक्लिक अम्ल, फॉस्फोलिपिड्स व फाइटीन के निर्माण में एवं स्वप्रकाश संश्लेषण में सहायक है। फॉस्फोरस मिलने से पौधों में बीज स्वस्थ पैदा होता है तथा बीजों का भार, पौधों में रोग प्रतिरोधकता व कीटरोधकता बढती है। फॉस्फोरस के प्रयोग से जडें तेजी से विकसित तथा सुदृढ होती हैं। पौधों में खडे रहने की क्षमता बढती है। इससे फल शीघ्र आते हैं, फल जल्दी बनते है व दाने शीघ्र पकते हैं। यह नत्रजन के उपयोग में सहायक है तथा फलीदार पौधों में इसकी उपस्थिति से जडों की ग्रंथियों का विकास अच्छा होता है। पौधों में फॉस्फोरस की कमी की अवस्था में जड की रूपात्मक संरचनाओं में परिवर्तन हो जाता है। फास्फोरस की कमी से ग्रसित पौधों में जड़ सामान्य से अधिक लम्बी तथा अधिक द्वितीयक जड वाली होती है। प्रभावित पौधे की जड में छोटे–छोटे तंतु (रूट–हेयर) सामान्य पौधे की जडों से अधिक पाये जाते है। फॉस्फोरस की कमी के कारण जडों से एसिड फास्फेटेज नामक किण्वक तथा अनेक रासायनिक पदार्थ आदि का रिसाव होता है। जड द्वारा स्त्रावित यह रासायनिक पदार्थ मिट्टी में उपस्थित अचल–फास्फोरस को चल रूप में बदलने में सहायक होते है जिसे पौधे आसानी से अवशोषित कर लेते है। फास्फोरस की कमी की अवस्था में जड की कोशिका की झिल्ली में कई ऐसे प्रोटीन के अणु (ट्रान्सपोर्टर) सक्रिय हो जाते है, जिनकी फास्फोरस के लिए अधिक आत्मीयता होती है। ये

ट्रान्सपोर्टर–प्रोटीन सक्रिय अवस्था में फॉस्फोरस के अणुओं को कोशिका के अंदर भेजने में मदद करते हैं। फास्फोरस की तरह यदि पौधों को नाइट्रोजन की कमी में उगाया जाए तो जड़ की कोशिका में ऐसे ट्रान्सपोर्टर–प्रोटीन सक्रिय हो जाते है, जो कोशिका में नाइट्रोजन के अवशोषण में मदद करते हैं। फॉस्फोरस की कमी के कारण पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियों का रंग हल्का बैंगनी या भूरा हो जाता है। फॉस्फोरस गतिशील होने के कारण पहले ये लक्षण पुरानी (निचली) पत्तियों पर दिखते हैं। पौधों की जड़ों की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है कभी–कभी जड़ें सूख भी जाती हैं। अधिक कमी में तने का गहरा पीला पड़ना, फल व बीज का निर्माण सही न होना भी होता है।

पोटाश : आमतौर पर भारतीय मृदाओं में पोटाश तत्व की पर्याप्त उपलब्धता होती है परन्तु लगातार सघन खेती के कारण आजकल मृदा में पोटाश की कमी भी देखने को मिल रही है। पोटाश का पौधों में पानी के उपयोग को नियंत्रित करने की क्षमता रखने के कारण, शुष्क खेती में पोटाश का विशेष महत्व है। यह पौधों को सूखा, गर्मी व सर्दी से बचाने व कीड़ों व बिमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी मदद करता है। इसके अलावा नत्रजन के साथ पोटाश के प्रयोग से फलों एवं उपज की गुणवत्ता एवं चमक बढ़ती है जिससे बाजार में उपज का बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। रासायनिक उर्वरक की कितनी मात्रा दी जानी चाहिए यह उर्वरक में मौजूद पोषक तत्वों के प्रतिशत पर निर्भर करता है। मृदा के पी–एच मान से मिट्टी के स्वास्थ्य और पोषक तत्वों की उपलब्धता की जानकारी प्राप्त होती है। अगर पी–एच मान 6 से 7.5 के मध्य है तो भूमि सामान्य प्रकृति की मानी जाती है अर्थात् भूमि में अधिकांश पोषक तत्वों की उपलब्धता रहती है। अगर पी–एच मान 6 से कम अथवा 7.5 से अधिक है तो पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता कम या ज्यादा आँकी जाती है जिसका फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मिट्टी का पी एच मान 8 से अधिक होने पर क्षारीयता की समस्या, कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है। ऐसे खेतों में जाँच आधारित जिप्सम डालने की सिफारिश की जाती है। मृदा जीर्णोद्धार के अंतर्गत गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जिप्सम उपयोग, जीवाणु खाद से बीजोपचार, सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग इत्यादि पर ध्यान देना होगा। साधारण किस्मों के लिए 35 किलो नाइट्रोजन एवं 12 किलो फॉस्फोरस प्रति एकड़ की आवश्यकता है परन्तु सभी संकर किस्मों एवं बीटी किस्मों में साधारण किस्मों की अपेक्षा दो गुना उर्वरक यानी 70 किलो नाइट्रोजन तथा 24 किलो फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है।

प्रमुख पोषक तत्वों के कार्य व कमी के लक्षण और उसका जड़ों पर प्रभाव

1. **फॉस्फोरस कमी के लक्षण :** पौधों की जड़ों की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है कभी–कभी जड़ सूख भी जाती है।
2. **पोटेशियम के कार्य :** जड़ों को मजबूत बनाता है एवं सूखने से बचाता है। फसल में कीट व रोग प्रतिरोधकता बढ़ाता है। पौधों को गिरने से बचाता है। जड़ों का विकास कम हो जाता है।
3. **कैल्शियम–कमी के लक्षण :** जड़ों का विकास कम तथा जड़ों पर ग्रन्थियों की संख्या में काफी कमी होना। रोगग्रस्त पौधों की मूसला जड़ों को छोड़कर मूलतन्तु सड़ जाते हैं। एग्रोबैक्टीरियम पादप जड़ों के साथ मुक्त संबंध में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है। फॉस्फोरस विलयकारी जीवाणु (पीएसबी वैम)– वेसीकुलर आरबस्कुलर माइकोराइजा (वैम) जो पादप जड़ों और विशेष कवकों के सहजीवन का प्रकार है, फसलों में फॉस्फोरस की उपलब्धता और अधिग्रहण को बढ़ाता है।

मृदा में जल के उचित निकास के प्रबंध

बढ़ते हुए कपास के पौधे को यदि अधिक मात्रा व अधिक समय तक पानी (खेत में भरा रहना) मिले तो यह कपास के पौधों की वृद्धि को रोकता है और पौधा कुछ समय बाद मुरझाना शुरू होता है, क्योंकि पानी से मृदा के छोटे–छोटे छिद्र बंद होने से जड़ों के लिए आवश्यक वायु के आवागमन में बाधा पड़ती है। मृदा में उपस्थित पोषक तत्व जड़ों के नीचे चले जाते है और लवण भूमि की ऊपरी सतह पर जमा हो जाते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

जलग्रस्त हालत में जड़ों का विकास : मिट्टी में अवायवीय हालत के तहत जड़ों के विस्तार में रुकावट पैदा होती है। जमीन के नीचे सतह की जड़े मर जाती है और अक्सर ऊपरी सतह पर जड़ प्रणाली का विकास होता है।

सूखे की हालत में जड़ों का विकास : प्रायोगिक रूप से चावल, गेहूँ, मक्का, फलियाँ और अंगूर में यह पाया गया है की सूखे की स्थिति में गहरी जड़ प्रणाली लाभदायी साबित हुयी है। विशेष रूप से फसल के अंतिम चरण में आने वाली सूखे की स्थिति को निपटने के लिए गहरी जड़ महत्वपूर्ण होती है उससे उपज में वृद्धि होती है। ऐसे स्थिति में पौधों की जड़ की गहराई में सुधार और जड़ के घनत्व से निचले पानी का उपयोग संभव हो सकता है। पौधे का सूखे से निपटने के लिए जड़ों का विकास और फैलाव पर निर्भर हो सकता है। बारानी परिस्थितियों में हिर्सुटम की अपेक्षा आर्बोरियम की फसल–पद्धति में कपास की पैदावार अधिकतम पाई गई है। अपेक्षाकृत अधिक गहरे जड़–विन्यास के परिणामस्वरूप देसी कपास सूखे के प्रति अधिक सहिष्णु देखी गई। दीर्घकालीन अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि देसी कपास में पोषक तत्वों को ग्रहण करने व उन्हें पौधे में वितरित

करने की क्षमता निर्धूटन की तुलना में अपेक्षाकृत अच्छी थी, जो कि उच्च सस्य – सूचकांक द्वारा पता लगा है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- ✓ जैविक खाद के अभाव के कारण मृदा में जैविक कार्बन का लगातार घटता स्तर।
- ✓ उर्वरको का उचित समय एवं सही विधि से प्रयोग न करने से उर्वरक उपयोग दक्षता कम होना।
- ✓ वर्षा व वायु से मृदा क्षरण के कारण पोषक तत्वो का धीरे–धीरे ह्रास होना।
- ✓ फसलो में उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग।
- ✓ सघन खेती के प्रचलन से खेतों में एक साथ कई पोषक तत्वो की कमी होना।
- ✓ मृदा में गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग न होना ।
- ✓ मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें।
- ✓ रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ कार्बनिक खाद, जैविक उर्वरको का भी प्रयोग करें।
- ✓ फॉस्फोरस उर्वरक को बुवाई के समय कूड में डालें।
- ✓ सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकतानुसार पूर्ति करें।
- ✓ जहां तक संभव हो सके फसल चक्र में एक दलहनी फसल अवश्य लें।
- ✓ फसल उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी जैसे उचित फसल व प्रजाति का चयन, प्रमाणित बीज का प्रयोग, समय पर बुवाई,

क्या आप जानते हैं ?

- जंग लगने से लोहे का भार-बढ जाता है।
- वायु प्रदूषण को कौनसी गैस प्रायः अधिक फैलाती है ? - कार्बनडाइ ऑक्साइड
- अम्लीय मिट्टी को कृषि योग्य बनाने हेतु निम्नलिखित में से किसका उपयोग किया जा सकता है ? - लाइम
- काली मिट्टी किस फसल के लिए उपयोगी है ? कपास
- मानव के शरीर में हृदय की धड़कन का औसत प्रति मिनट होता है - 70 बार
- जल की स्थायी कठोरता का कारण है - कैल्शियम सल्फेट की उपस्थिति
- क्या कारण है कि स्वच्छ पानी के अन्दर भी गोताखोर को सही दिखाई नहीं देता - पानी के अन्दर पुतली की फोकस दूरी बदल जाती है, जिससे रेटिना पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं बन पाता
- बादलों की गरज को सुनने से पहले, उसकी विद्युत चमक दिखाई पड़ती है, किंतु हमें उनका अनुभव आगे-पीछे होता है- प्रकाश की गति, ध्वनि की अपेक्षा अधिक होने के कारण ऐसा होता है।

■ रोग पैदा करले कोई जिन्दगी के वास्ते, सिर्फ सेहत के सहारे जिन्दगी नहीं कटती।

– फिराक

7. बीटी संकर कपास के विश्व रिकार्ड से आगे

डॉ. अंबाती रविन्द्र राजू, प्रधान वैज्ञानिक

श्रीमती रचना देशमुख, वरिष्ठ तकनीकी सहायक

श्री प्रणय तिवारी, यंग प्रोफेशनल

फसल उत्पादन विभाग

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

यवतमाल जिले के गाँव अंबोरा के किसान श्री अमृत देशमुख द्वारा बीटी संकर कपास की 97.5 क्विं/हे पैदावार प्राप्त की गई। इस किसान के पास 10 एकड जमीन है जिसमे नहर के पानी से सिंचाई होती है। लेखक द्वारा 28 नवम्बर, 2012 को जिले के कुछ अधिकारियों के साथ इस किसान के खेत का दौरा किया गया था। इस दौरे के बारे में पहले ही लेखक द्वारा रिपोर्ट किया गया है। यह बीटी संकर कपास के उत्पादन में विश्व रिकार्ड की वास्तविक कहानी है। इसके पूर्व मध्य प्रदेश के निमाड जिले से एक किसान द्वारा 104 क्विं/हे कपास का उत्पादन का रिकार्ड 'कॉटन डवलपमेंट' में दर्ज किया जा चुका है। इस किसान द्वारा भी इसी इतिहास को दोहराकर जोड– कतार बुआई पद्धति में 2.1×1.35×0.30मी दूरी पर आरसीएच–656 कपास को जून से मई के मध्य लगाया गया। जिसे एक पखवाड के अंतराल में सतह जलप्रवाह पद्धति से सिंचित किया गया। गोबर की खाद 5 ट्राली/हे देने के साथ नत्रःफास्फारस (P_2O_5) : पोटाश(K_2O) प्रति हे. 250:225:265 किग्रा की दर से अनुप्रयोग किया गया। इसके पूर्व वर्ष 2011 में कपास को कम अंतर पर लगाने पर गूलर सड गए थे। इस वर्ष इस किसान द्वारा कपास के पौधा की कतारों को बास व तार/रस्सी द्वारा सहारा दिया गया क्योंकि पौधा पर गूलरों का भार बहुत अधिक (5 ग्रा. प्रति बॉल) था और हमारे दौरे के समय प्रति पौधा गूलरों की औसत सख्या 179 दर्ज की गई। पौधा में मैग्नीशियम की कमी दिखाई दे रही थी। इस किसान को इन सूक्ष्म पोषक तत्वों के फसल पर गूलर सड़न तथा पत्तियो के रोगों के नियंत्रण के लिए फफूँदनाशकों के छिडकाव के साथ ही गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्व मैग्नीशियम तथा जिंक सल्फेट प्रत्येक 20 किग्रा/हे की दर से तथा बोरेक्स(बोरान) 5 किग्रा/हे. की दर से मृदा अनुप्रयोग के रूप में देने की सलाह दी गई। कपास संकर आरसीएच–656 छः एकड़ क्षेत्र में तथा आरसीएच–2 चार एकड़ में 67.5 क्वि/हे. उपज प्राप्त की गई जो वर्तमान में सर्वाधिक उपज है।

इस सफलता का रहस्य है प्रारूपिक दीर्घ अवधि का जीनप्रारूप राशी–656 (गूलर भार 8 ग्रा) तथा अधिक अंतर जहाँ सिंचाई और पोषक द्रव्य सीमित नहीं थे। इस किसान की अपनी उपलब्धि के पश्चात दूसरे किसान इसके पास मार्गदर्शन के लिए आने लगे तथा यह किसान सूर्य प्रकाश की उपलब्धता तथा कपास की कतारों की दिशा, आदि पर किसानों को व्याख्यान देने लगा। लेकिन बहुत से किसानों द्वारा इसकी विधियों को दोहराने के बाद भी उपज में वह उपलब्धि हासिल नहीं कर सके यहाँ तक कि इसकी आधी उपज भी नहीं। इसका कारण दूसरे किसानों द्वारा उपयुक्त जीनप्रारूपों का चुनाव नहीं करना था जो लंबी अवधि तक उपज न दे सके तथा उतने ओजपूर्ण भी न थे। इसके साथ ही सिंचाई जल तथा पोषक द्रव्य प्रबंधन भी उतना बेहतर नहीं था। यद्यपि, हमने दूसरे किसानों से सुना कि इसके 130 क्विं प्रति हे. की उपज को प्रमाणित करने की आवश्यकता है और इस उद्देश्य के लिए कावेरी–मोक्ष की सिफारिश की गई।

अनुसंधान के नतीजों के आधार पर कहा जा सकता है कि ड्रिप सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत 1.8×0.90×0.90 मी. अंतर पर जोड–कतार की प्राथमिकता में जून के प्रारंभ में अग्रिम बुआई करने पर कपास की दो कतारों के मध्य सोयाबीन की दो कतारें अंतःफसल के रूप में समायोजित की जा सकती हैं। कपास को बारानी के रूप में लगाने पर आवश्यकतानुसार उर्वरक देकर फसल को नवम्बर के अंत में पेड़ी बनाकर चने को उर्वरकों के साथ मिलाकर छिटकवा बुआई सिंचाई–जल के साथ की जा सकती है। इसके साथ 3–4 महीने के फसलाच्छादन 80%

धरती पर अपना सारा काम खत्म कर लिया हो। मैं हमेशा कुछ बतान की हालत में रहना चाहता हूं, और चाहता हूँ कि मेरी मंजिल मेरे पीछे नहीं, बल्कि मेरे सामने हो। फिर भी, मैं सफल व्यक्तियों के साथ लड़ना चाहता हूँ, उन पर हमले करना चाहता हूँ, ताकि वे पत्थरों के किले बनावें। इससे आदमी में शक्ति आती है और इससे वह सीखता भी है?

-जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

- स्वभाव ही मनुष्य के जीवन का स्वर्ग या नरक निर्धारित करता है।

  - डी. बारिया

- परिश्रम की चाबी ही किस्मत का द्वार खोलती है।

  - चाणक्य

- जीवन संघर्ष में वही सफल होते हैं, जिन्हें माता–पिता ने शांत रहने और धैर्य रखने की शिक्षा दी हो।

  - भर्तृहरि

- सुगंध के बिना पुष्प, तृप्ति के बिना प्राप्ति, ध्येय के बिना कर्म व प्रसन्नता के बिना जीवन व्यर्थ है।

  - जयशंकर प्रसाद

उर्वरकों के साथ विकसित होकर फसल मार्च तक परिपक्व होगी और 80% कपास की पैदावार प्राप्त होगी। इससे गुलाबी सूंडी का जीवनचक्र भी खण्डित होगा। तोपाबीन की 50% अतिरिक्त उपज एक युक्तिसंगत फायदा करेगी जो इनकी खेती की लागत की भरपाई कर सकती है। किसानों द्वारा वर्धा और नागपुर में इन प्रणालियों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

सफलता से डर

मुझे कभी किसी व्यापारी ने रिश्वत नहीं दी थी, पर एक बार एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका के मालिक ने मुझसे कहा कि मैं उसके मित्र चित्रकारों के बारे में प्रशंसा भरी समालोचनाएँ लिखूँ, तो वह पत्रिका में मुझे समालोचक रख सकता है। मैं नहीं माना।

मुझे सफलता से डर लगता है। सफलता प्राप्त करने के बाद ऐसा लगता है, जैसे आदमी ने इस

8. कपास की शुद्धता बढ़ाएँ और अधिक दाम पाएँ

श्री सुरेश कुमार, वैज्ञानिक
डॉ. जल सिंह, वैज्ञानिक
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, सिरसा

कपास उत्तर भारत के राजस्थान, हरियाणा व पंजाब राज्यों की मुख्य नकदी फसल है। इसकी चुनाई मुख्य स्तर पर होती है। किसानों को कपास की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए चुनाई के समय विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है जिससे कपास में कचरा आदि बेकार की चीजें न मिल पाएं। कपास में कचरे की मिलावट से उसकी दिखावट व गुणवत्ता दोनों ही खराब हो जाती है। जिससे किसानों को मण्डी में उसका उचित दाम नहीं मिल पाता। अतः अधिक कचरे के कारण कपास कम दाम पर बेचनी पडती है। अधिक कचरा होने से कपास के ओटाई, कताई व बुनाई मिलों को भी कपास की सफाई व अन्य प्रक्रियाओं पर अधिक खर्च व नुकसान उठाना पडता है। अतः कपास उत्पादकों को कपास की चुनाई के समय व मण्डी ले जाने तक निम्नलिखित तरीके सावधानी पूर्वक अपनाने चाहिए।

- चुनाई से पहले ओस को पूरी तरह उडने देना चाहिए। नहीं तो कपास काला पड़ने लगता है।
- सिर पर सूती कपडा बाँधकर चुनाई करनी चाहिए जिससे सिर के बाल कपास में ना मिलें।
- चुनाई पूरे खुले गूलरों से ही करनी चाहिए। अपरिपक्व गूलर से की गयी चुनाई जल्दी खराब हो जाती है।
- कपास एकत्र करने के लिए सूती बैग या चादरों का प्रयोग करना चाहिए।
- चुनाई पौधा के निचले हिस्सा से शुरू करके ऊपर की तरफ करते जाएँ।
- कपास की सूखी पत्तियां, गूलरों के छिलके, डंठल आदि कचरा कपास न जाने दें।
- कच्चे, कीट व बीमारी से ग्रस्त गूलरों की कपास अलग रखें अन्यथा वह सारी कपास को खराब करेगी।
- कपास चुनकर सूती चादर या तिरपाल पर रखे, जिससे मिट्टी व अन्य कचरें उसमें ना मिल पाएँ।
- लम्बे रेशों वाली संकर कपास को छोटे रेशों वाली कपास में न मिलाएं, उनको अलग–अलग चुनाई करके अलग–अलग ही बिक्री करें।
- कपास को छाया में ही सुखाएं, धूप में सुखाने से कपास रेशो की गुणवत्ता खराब हो जाती है।
- चुनी हुई कपास को ओस, वर्षा, धूल, धूप, कीटों व चूहों से बचाकर रखना चाहिए।
- खुले स्थान में भंडारण करते समय चारों तरफ से तिरपाल ढक कर रखें।
- घरों में रखते समय कमरा साफ–सुथरा हवादार व पक्के फर्श वाला होना उचित रहता है।
- कपास में कपास के अलावा कोई भी वस्तु आदि कचरा नहीं मिलना चाहिए।
- मण्डी ले जाते समय ट्रॉली को साफ करके उसमें कपडा बिछाकर खुला डालकर ले जाएं तथा तिरपाल भी साथ रखें।
- कपास को यदि मण्डी में रखना पडे तो उस जगह को साफ करके तब रखे तथा तिरपाल से ढक दें।

इस प्रकार उपरोक्त छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देकर किसान अपनी कपास की गुणवत्ता को बढ़ा सकते है। इससे किसानों को उसका अधिक भाव मिलेगा और आर्थिक दशा भी सुधरेगी। उद्योगों में भी स्वच्छ एवं गुणवत्ता वाली कपास की मांग बढ रही है। गुणवत्ता युक्त कपास उत्पादन से कपास मिलों को बहुत लाभ होगा और उससे बनने वाली चीजें उच्च कोटि की बनेंगी साथ ही अपने देश की आर्थिक उन्नति होगी।

हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। हिंदी जबकि राष्ट्रीय एकता की ओर अग्रसर होने में एक कदम है, उसका विरोध करना अकारण होगा। यह अन्ततः प्रान्तीय कार्य का एक माध्यम स्वरूप होगी और भारतीय एकता को एक सूत्र में बाँध के रखने में सहायक होगी।

- नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी। हिंदी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिंदी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

- रवीन्द्रनाथ ठाकुर

- संसार में न तो कोई हमारा शत्रु है न ही कोई मित्र। उनके प्रति हमारे विचार मित्र और शत्रु का अंतर करते हैं।

  - चाणक्य

- दिल में कभी बुरे विचार मत आने दो, वह अपना असर दिखाए बिना नहीं रहते।

  - महात्मा गाँधी

- मनुष्य की वाणी से उसके गुण और अवगुण जाने जा सकते हैं।

  - शेख सादी

- जो विनम्र है वही विश्व विजयी है।

  - चाणक्य

- संसार में सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से प्राप्त होता है।

  - प्रेमचंद

- कष्ट सहने पर अनुभव होता है।

  - प्रेमचंद

9.

कपास के उन्नत उत्पादन के लिये व्यवस्थित ढंग से प्रौद्योगिकी का प्रबन्धन

श्री रोहित कटियार, तकनीशियन

डॉ. पूजा वर्मा, वैज्ञानिक

डॉ. ब्लेज डिसूजा, विभाग प्रमुख

फसल उत्पादन विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

कपास भारत वर्ष की एक मुख्य व्यावसायिक एवं महत्वपूर्ण रेशेवाली फसल है। कपास उत्पादन का भारत की अर्थव्यवस्था में एक विशेष स्थान है। हमारा देश विश्व के अन्य देशों की तुलना में अधिक क्षेत्र में कपास की खेती करने वाला देश है। लेकिन फसल की उत्पादकता प्रति एकड़ क्षेत्रफल उत्पादकता की दृष्टि से पीछे है। देश में कपास की पैदावार की कमी का मुख्य कारण यह है कि हमारे देश में कपास का अधिकांश क्षेत्र असिंचित अर्थात वर्षा पर आधारित है।

कपास के उन्नत उत्पादन में प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। फसल की बुवाई, खेत की जुताई, निराई–गुडाई खरपतवार नियत्रण एवं समय–समय पर खाद का समन्वय ही कपास के उन्नत उत्पादन को निर्धारित करता है। अतः कपास के उन्नत उत्पादन के कुछ मुख्य प्रबन्धन इस प्रकार है :

क) भूमि की तैयारी : कपास की खेती रेतीली भूमि को छोडकर सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है। कपास की अच्छी पैदावार के लिये गहरी जुताई लाभदायक है। मृदा की उर्वरता को बढाने के लिये गोबर की खाद 2–3 ट्राली प्रति एकड डालना आवश्यक है।

ख) बुवाई का समय : महाराष्ट्र राज्य में कपास मुख्यतः बरसात के पानी पर निर्भर है। इसलिये यहाँ पर बुवाई का समय 15 जून से 25 जुलाई तक उत्तम पाया गया है। इसके बाद की जाने वाली बुवाई से प्राप्त फसल मौसम के प्रतिकूल प्रभाव के कारण खराब होने का डर एवं कीट बीमारियों का प्रकोप ज्यादा होता है। कपास की बुवाई मशीनों द्वारा या हाथों के द्वारा लाइन बनाकर की जा सकती है। बुवाई से पहले पेंडिमिथलिन (स्टाम्प) 1.5 लीटर प्रति एकड़ पानी में डालकर प्रयोग करने से खरपतवार नियंत्रण में सहायक है।

ग) निराई गुड़ाई से खरपतवार पर नियंत्रण : कपास की फसल के लगभग दो माह होने तक लाइनों के बीच में निराई गुड़ाई कर के खरपतवार का नियंत्रण करना आवश्यक है। खरपतवार के कारण कपास के पौधों का पोषक पदार्थ एव नमी और रोशनी के लिये प्रतिस्पर्धा होती है। खरपतवार नियंत्रण के लिये निराई गुड़ाई एक उत्तम तरीका है किन्तु आवश्यक होने पर हम कुछ अन्य रसायन का उपयोग भी कर सकते है जैसे क्विजालोफ इथाइल (टर्गासुपर)।

घ) उर्वरकों का उपयोग : कपास की अच्छी फसल के लिये भूमि में सही पोषक तत्वों का होना आवश्यक है। पौधों में पोषक तत्वों की आवश्यकता उसके जड तन्त्र के विकास तथा ऊपरी भाग के विकास पर निर्भर होती है। कपास के पौधे की जडे अधिक गहराई तक जाकर भूमि में उपस्थित उर्वरक का अच्छी तरह उपयोग कर लेती है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैंगनीज, जस्ता तथा बोरॉन जो फसल के लिये आवश्यक है उन्हे रासायनिक/जैविक उर्वरकों के रूप में फसल को समय–समय पर दिया जाता है। पोषक तत्वों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश मुख्य तत्व है जो फसलों के पोषण में मुख्य भूमिका निभाते है। इनकी मात्रा 2:1:1 के अनुपात में आवश्यक है।

उर्वरकों का पौधों की वृद्धि में योगदान : उर्वरक पौधों के लिये पोषक तत्वों का काम करते है। अतः उर्वरकों द्वारा पौधो की वृद्धि में किये जाने वाला योगदान जानना अतिआवश्यक है।

नाइट्रोजन : नाइट्रोजन एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है जो कि क्लोरोफिल एवं अमीनो एसिड का मुख्य भाग है। फसल वृद्धि, वानस्पतिक वृद्धि एवं पैदावार के लिये नाइट्रोजन अत्यन्त आवश्यक है। नाइट्रोजन खाद मुख्य रूप से यूरिया के रूप में दी

जाती है। फूल एवं फल बनने के समय नाइट्रोजन की माग अधिक होती है। जिसके कारण फूल व फल बनते समय यूरिया का देना आवश्यक होता है। यूरिया का पौधों की जड से थोड़ी दूरी पर भूमि के अन्दर डालना उचित पाया गया है।

फॉस्फोरस : फॉस्फोरस उर्वरक का जड़ों के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। फॉस्फोरस की कमी के कारण कम पैदावार तथा कपास की गुणवत्ता में कमी देखी गई है। फॉस्फोरस के उचित उपयोग से पैदावार में अधिकता दर्ज की गई है। अतः आवश्यकतानुसार फॉस्फोरस उर्वरक का इस्तेमाल करना जरूरी है।

पोटैशियम : पोटैशियम भी पौधो के लिये एक मुख्य तत्व है जो कार्बोहाइड्रेटस को पौधे में एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सहायक है। पोटैशियम कपास की उपज बढाने के साथ रेशे की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। पोटैशियम तत्व पौधों में रोगों की रोकथाम के लिए भी सहायक पाया गया है।

अतः उपरोक्त लेख से यह स्पष्ट होता है कि कपास की फसल से उन्नत उत्पादन के लिये कपास के लिये सुनिश्चित की गयी प्रौद्योगिकियों का सही रूप में प्रबन्धन उत्यन्त आवश्यक है। प्रौद्योगिकियों का उचित रूप से उचित समय पर पालन करने से कपास की फसल से उन्नत उत्पादन लिया जा सकता है।

- जो मन की पीड़ा को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता, उसी को क्रोध आता है।

  - रवीन्द्रनाथ ठाकुर

- क्रोध में व्यक्ति सच्चाई नहीं कहता, वह तब सिर्फ दूसरे का दिल दुखाना चाहता है।

  - प्रेमचंद

- कुलीन व सज्जन व्यक्ति क्रोध आने पर भी मर्यादा पूर्ण वचन कहता है। जैसे गन्ना निचोड़े जाने पर भी मधुरता ही उगलता है।

  - अज्ञात

- गुस्से का बेहतरीन इलाज खामोशी है।

  - स्वामी विवेकानंद

- मित्र के तीन लक्षण है – अहित से हटाना, हित में लगाना और हर तरह की मुसीबत में साथ निभाना।

  - बुध्दचरित

- जब तक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं हुई है तथा बुढ़ापा नहीं आया है तब तक समझदार को अपने हित साध लेना चाहिए।

  - भर्तहरि

10. कपास की खेती में अतिरिक्त लाभ के लिए अंतर फसलों का योगदान

श्री सी.आर. मुंडाफले, तकनीशियन
फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा के खतर से निपटने के लिए फसल उत्पादकता में सुधार की आवश्यकता है। लागत के हिसाब से कपास की कम कीमत, किसानो के मध्य कपास की खेती को हतोत्साहित कर रही है। कपास आधारित अंतरफसल, इस स्थिति में निपटन के लिए बेहतर समाधान प्रदान करती है। भूमि के एक ही टुकडे पर एक ही मौसम के दौरान, एक फसल के साथ दूसरी फसल की रोपण प्रणाली, आमदनी का एक विकल्प प्रदान करती है। इसका मूल उद्देश्य उपलब्ध क्षेत्र का कुशल उपयोग करके कुल उपज और आय में वृद्धि करना है।

कपास की फसल के साथ सहफसलें खेती करके अतिरिक्त लाभ अर्जित कर सकते है। कपास एक लंबी अवधि वाली फसल है, और प्रारंभिक अवस्था में इसके पौधों में वृद्धि धीमी गति से होती है। इसके अलावा कपास की पक्तियो के मध्य खाली स्थान भी अधिक होता है। कपास की दो पक्तियो के मध्य मूँग, उडद, मूंगफली, सोयाबीन, अरहर जैसी फसलें, प्याज और मिर्ची जैसी सब्जी फसलें और हरी खाद फसलें जैसे सनहेम्प और ढेंचा आदि फसलों की बुवाई कर अतिरिक्त मुनाफा अर्जित किया जा सकता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि फसल क्षेत्र, राज्य के अनुसार सह–फसलें भी बदलती जायेंगी क्योंकि फसल पूर्णरूप से मृदा की अवस्था एवं मौसम पर निर्भर करती है जो कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र एवं एक राज्य से दूसरे राज्य के लिये भिन्न भिन्न होगी। क्षेत्र एवं राज्य अनुसार निम्नलिखित सह–फसलें लगायी जा सकती हैं तथा निम्नवत फसल प्रणाली को अपनाया जा सकता है :

राज्य	फसल प्रणाली	सहफसल प्रणाली
पंजाब हरियाणा राजस्थान	कपास – गेहूँ, कपास–सरसों	कोई अंतरफसल नहीं
मध्य प्रदेश	कपास (एक फसल), कपास–ज्वार (दो वर्ष रोटेशन), कपास–गेहूँ	कपास + उडद (1:1 तथा 2:1) कपास + सोयाबिन (2:1)
गुजरात	कपास (एक फसल), कपास–ज्वार (दो वर्ष रोटेशन), कपास–गेहूँ	संकरित कपास + मूँगफली, देसी कपास + उड़द
महाराष्ट्र	कपास (एक फसल), कपास–ज्वार (दो वर्ष रोटेशन)	कपास + मूँग, उड़द कपास + सोयाबीन कपास + मूँगफली अरहर के साथ मिश्रित फसल

- दुनिया की वस्तुओं में सुख की तलाश व्यर्थ है। आनंद का खजाना तो आपके अंदर ही है।

– स्वामी रामतीर्थ

- भूल करना मनुष्य का स्वभाव है, की गई भूल को स्वीकार करना एवं उसे फिर न करने का प्रयास करना वीर एवं शूर होने का प्रतीक है।

– महात्मा गाँधी

- रत्नों से भरा रहने पर भी समुद्र मद में चूर नहीं होता, किंतु एक–आध मोती पा लेने से ही लोभी मदमस्त हो जाता है।

– अज्ञात

- कृत्रिम प्रेम बहुत दिनों तक चल नहीं पाता। स्वाभाविक प्रेम की नकल नहीं हो सकती

– स्वामी रामतीर्थ

राज्य	फसल प्रणाली	सहफसल प्रणाली
कर्नाटक	कपास (एक फसल), कपास–गेहूं	कपास + मिर्च/प्याज (सिंचित क्षेत्र) कपास + चावल (ज्यादा बारिश क्षेत्र)
तमिलनाडु	कपास (एक फसल), चावल–कपास चावल–चावल–कपास, कपास–ज्वार कपास–दाल वर्गीय फसल–ज्वार	कपास + प्याज कपास + मूंगफली कपास + उड़द
तेलंगाना तथा आंध्रप्रदेश	कपास (एक फसल) कपास–चावल, कपास–मिर्च, एवं कपास–तंबाकू (दो वर्ष रोटेशन)	कपास + उड़द (12) कपास + अरहर कपास + मिर्च सोयाबीन के साथ मिश्रित फसल

सहफसली खेती के अतिरिक्त लाभ :

1. **खरपतवार नियंत्रण :** कपास के बीच के जगह में अंतरफसल लगाने से उस जगह का सही तरीके से उपयोग होकर, यह खरपतवार नियंत्रण में सहायक साबित होता है। जो कि कपास की फसल की एक मुख्य समस्या है।

2. **कीट रोग नियंत्रण :** कपास में सहफसल के वजह से कीट सबसे पहले सहफसल पर आक्रमण करती है, जिसे हमें तुरंत नियंत्रण करने का प्रयास करते हैं। इस तरह से मुख्य कपास की फसल को नुकसान से बचा सकते हैं।

3. **भूमि की उर्वराशक्ति में इजाफा :** कपास के साथ दलहनी फसलों की सहफसली खेती से नत्रजन बढ़ने से भूमि की उर्वरा शक्ति में इजाफा होता है। साथ ही सहफसली फसल के अवशेष उसी में डालने से कार्बनिक कार्बन में भी सुधार होता है। कपास में हरी खाद की अंतरफसल से विविध पोषक तत्वों में भी सुधार होता है।

4. **नमी संरक्षण :** सहफसली खेती जमीन में नमी संरक्षित कर पानी की जरूरत को कम कर देती है। जिससे कम बारिश वाले क्षेत्र में भी कपास की फसल अच्छे से तैयार हो सकती है।

अतः कपास में अंतर–फसल लगाने से किसानों एवं भूमि को कई लाभ मिलते हैं, यह अंतर–फसल फसल की दशा को सुधार कर रखती है एवं साथ ही साथ किसानों को भी अतिरिक्त आय का विकल्प देती है।

11. कपास में खरपतवरनाशकों और सूखा सहनशीलता के लिए जैवप्रौद्योगिकी

- डॉ. राघवेन्द्र के.पी., वरिष्ठ वैज्ञानिक
- डॉ. संतोष एच.बी., वैज्ञानिक
- डॉ. जॉय दास, वैज्ञानिक
- डॉ. राकेश कुमार, वैज्ञानिक

फसल सुधार विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

किसी भी अन्य फसल की तरह, कपास में खरपतवारों का प्रबंधन भी प्रमुख उत्पादन बाधाओं में से एक है। उपज में हानि और मानव श्रम उपलब्धता मुख्य रूप से खरपतवारों से संबंधित समस्याएँ हैं। इस प्रकार, खरपतवारों के नियंत्रण के लिए रसायनों का अनुप्रयोग वैकल्पिक रणनीति के रूप में अपनाया गया है। रसायन जो कि खरपतवार को नष्ट करते हैं उन्हें खरपतवारनाशक अथवा शाकनाशी कहा जाता है। विशिष्ट खरपतवारनाशकों का उपयोग फसल वृद्धि के विशिष्ट स्तर पर किया जाता है। प्रायक प्रभाव वाले खरपतवारनाशकों का छिड़काव करने पर, मुख्य फसल में चयन के बहाव अथवा आकस्मिक छिड़काव/अपवहन के कारण होनेवाले दुष्प्रभाव जैसी कुछ समस्याएँ हैं।

खरपतवारनाशकों के प्रति सहनशील परजीनी कपास

प्रत्येक खरपतवारनाशक की विशिष्ट क्रिया-पद्धति है और वे पादप जातियों की कोशिकाओं में विशिष्ट लक्षित प्रोटीन/जैविक अणु पर क्रिया करते हैं। खरपतवारनाशक द्वारा लक्षित प्रोटीन खरपतवारनाशक/ फसल के पादपों की वृद्धि एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। यदि फसल के पौधे खरपतवारनाशक के विरुद्ध प्रतिरोधिता प्रदर्शित करते हैं तो वे निम्न तीन रणनीतियों को अपनाते हैं।

1. लक्षित प्रोटीन पर बंधनकारी स्थल इस प्रकार परिवर्तित होना चाहिए जिससे खरपतवारनाशक इससे बंधन न कर सके।
2. फसल के पौधों की कोशिकाओं में लक्षित प्रोटीन का अतिरिक्त उत्पादन हो, जिससे कि खरपतवारनाशी की सक्रियता के बावजूद पौधे के लिए कुछ प्रोटीन अभी भी पौधे के जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए उपलब्ध हो।
3. विशिष्ट प्रोटीनों का उत्पादन कर खरपतवारनाशकों को निष्क्रिय बनाना अथवा निष्क्रिय करना। वर्तमान में, पहली और तीसरी रणनीतियों के द्वारा खरपतवारनाशकों के प्रति सहनशील व आनुवांशिक परिवर्तित कपास विकसित किया गया है जो वैश्विक बाजार में उपलब्ध है। इसका एक उदाहरण है ग्लाइफोसेट के प्रति सहनशील आनुवांशिक परिवर्तित कपास है।

ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक पादप कोशिका में एक इ.पी.एस.पी.एस. नामक किण्वक को लक्षित करता है जो आवश्यक सुगन्धित अमीनो एसिड के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। कोशिका में इसका उत्पादन रुकने से फलस्वरूप प्रोटीन संश्लेषण के लिए अमीनो एसिड्स की अनुपलब्धता उत्पन्न हो जाती है। प्रोटीन पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए आवश्यक है। जीवाणु *एग्रोबेक्टीरियम ट्यूमेफेसेंस* के विभेद सीपी-4 से किण्वक इ.पी.एस.पी.एस. के लिए जीन कोडिंग को क्लिक करने में अनुसंधानकर्ता सक्षम हैं। सीपी-4 इ.पी.एस.पी.एस. प्रोटीन की संरचना पादप इ.पी.एस.पी.एस. से अलग होती है जिससे ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक बंधन और कार्य नहीं कर सकता। हालांकि, जीवाणु के इ.पी.एस.पी.एस. का कार्य पादप इ.पी.एस.पी.एस के समान ही होता है। परजीनी कपास को सीपी-4 इ.पी.एस.पी.एस. के लिए जीन के समावेश द्वारा विकसित किया गया है। इस प्रकार यह परजीन रहित समरूप कपास की तुलना में ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक का सामना करने में सक्षम है। इस प्रकार खेत में, खरपतवारनाशक सिर्फ खरपतवारों का ही नाश करेगा जबकि संशोधित प्रोटीन के साथ परजीनी कपास अप्रभावित रहती है।

शोधकर्ताओं ने इ.पी.एस.पी.एस. के लिए पादप प्रणाली से

उत्परिवर्तन के साथ जीन को सफलतापूर्वक क्लोन किया है जो कि खरपतवारनाशक के प्रभाव पर भी काबू पाने में सक्षम है। इसी प्रकार, परजीनी प्रयास के द्वारा खरपतवारनाशक सहनशीलता के लिए वशाणुओं (जीनों) को पहचानने और इनका समावेश करने के लिए अनुसंधान कार्य बडे पैमाने पर चल रहा है।

सूखा सहिष्णुता के लिए जैव प्रौद्योगिकी

कपास का 60% से अधिक क्षेत्रफल बारानी परिस्थिति के अंतर्गत है। कपास की फसल को अन्य फसलों की तुलना में अपेक्षाकृत सूखा ज्यादा सहनशील है। हालाकि कपास की पुष्पन और गूलर विकास की महत्वपूर्ण अवस्था में जल की कमी उपज में भारी कमी का कारण बनता है। कपास में सूखे के प्रति सहिष्णुता कई कारकों द्वारा नियंत्रित होती है, इसलिए कपास की फसल में सूखा सहनशीलता विशेषक गुण जैवप्रौद्योगिकी के माध्यम से प्रदान करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। पौधों से जल हानि होने से कोशिकाओं की सक्रियता में कमी आती है। अतः सहिष्णुता विशेषक लक्षण प्रदान करने के लिए, पहले हमें कोशिकाओं को निर्जलीकरण से बचाने की आवश्यकता है। इसे कोशिका स्तर की सहिष्णुता कहा जाता है। अधिकांश जैवप्रौद्योगिकीय विधियों का लक्ष्य कोशिका से जल हानि को कम करना होता है। जिससे पौधा जीवित रहेगा।

वर्तमान में, सूखा सहनशीलता विशेषक लक्षण के लिए परजीनी कपास की वाणिज्यिक किस्म नहीं है। लेकिन मक्का की सूखा सहिष्णु परजीनी किस्म बाजार में पहले से ही उपलब्ध है। जल्दी ही, बाद में हम एक ही परजीन के साथ कपास की किस्में देखेंगे। इसी दिशा में एक जीवाणु बेसीलस सबटीलिस से पृथककृत एक जीन का समावेश करके सूखा सहिष्णु पौधा विकसित किया गया है। यह ठंड आघात प्रोटीन (सीएसपीबी) का संकेतन करता है।

सीएसपीबी जीन का क्या महत्व है ?

पौधों के पर्यावरणीय प्रतिबल के प्रभाव में आने पर प्रोटीन संश्लेषण में एकदम रुकावट आती है और इसके परिणामस्वरूप उन प्रोटीनों पर निर्भर रहने वाले उपापचयों में भी रुकावट आती है। उपर्युक्त कारणों में से एक है, आर.एन.ए. की अस्थिरता और आर.एन.ए.(फोल्डिंग) की अवाछनीय माध्यमिक संरचना; जो प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करते हैं। प्रतिबल के दौरान आर. एन.ए. की माध्यमिक संरचना का खुलना प्रोटीन संश्लेषित उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। यह देखा गया है कि जीवाणु बेसीलस सबटीलिस कठोर पर्यावरणीय परिस्थिति में जीवित रहने के लिए जाना जाता है। इस तरह की सहिष्णुता के लिए जिम्मेदार अणुओं में से एक को ठंडा आघात प्रोटीन (बी) के रूप में पहचाना गया है। ये प्रोटीन स्टेबिलाइजर्स के रूप में कार्य करते हैं और आर.एन.ए. की माध्यमिक संरचनाओं को प्रकट करते हैं। सरक्षक की यह क्रियाशीलता कोशिकाओं की रक्षा के लिए कोशिकीय प्रक्रियाओं को सामान्य करने के लिये है जिससे प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से कार्बन स्थिरीकरण पर सूखा प्रतिबल के प्रभाव को कम किया जाता है।

सूखा सहिष्णुता का कोशिकीय स्तर पर कई वंशाणुओं (जीन) द्वारा नियमन होता है। अतः शोधकर्ताओं ने पादप प्रणाली में अथवा सूक्ष्मजीवों से कई वशाणुओं की पहचान की है। जैसे कि, ओसमोटिन, ग्लाइसीन, बीटेन और ट्रीहेलोज, आदि जो कोशिकाओं से जल की हानि को बचाने के लिए कोशिकीय परासरणी सांद्रता में सुधार के लिए रसायनों के लिए सकेतन, विनियामक प्रोटीन जो उपरोक्त रसायनों, जैसे कि, सूखा अनुक्रियात्मक तत्व बाध्यकारी(डी.आर.इ.बी.) रूपांतरण कारक, के उत्पादन में वृद्धि करते हैं। विशिष्ट वशाणुओं (जीन) का उपयोग करके जीणता हार्मोन, एथिलीन और विशेषकर प्रतिबल के तहत साइटोकाइनिन की अति अभिव्यक्ति के संश्लेषण की रोकथाम पौधे को पर्यावरणीय घटनाओं से निपटने में मदद करता है।

विश्व में हिंदी पहले स्थान पर

चीनी भाषा, चीन और उसके आस–पास के देशों में ही बोली जाती है, जबकि हिंदी विश्व के सौ से अधिक देशों में बोली–समझी जाती है। चीन की आबादी सबसे ज्यादा है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी भाषा भी सबसे ज्यादा बोली जाती है। आंकड़े बताते हैं कि विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा 'हिंदी' है।

– डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल

12.

कपास में तंतु उपज में सुधार के लिए जैवप्रौद्योगिकी

डॉ. राघवेन्द्र के.पी., वरिष्ठ वैज्ञानिक

डॉ. संतोष एच.बी., वैज्ञानिक

डॉ. जॉय दास, वैज्ञानिक

डॉ. राकेश कुमार, वैज्ञानिक

फसल सुधार विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

मानवता की बेहतरी के लिए जैव प्रौद्योगिकी को जीवित जीवों के उपयोग के विज्ञान के रूप में सहजता से परिभाषित किया जा सकता है। सभी जीवित जीव कोशिकाओं द्वारा गठित होते हैं। कोशिका जीवन की बुनियादी इकाई है। एक जीव एकल अथवा बहुकोशिकीय हो सकता है। एकल कोशिकीय जीवों के लिए जीवाणु एक उदाहरण है। कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहा जाता है, और विभिन्न प्रकार के ऊतक एक साथ मिलकर बहुकोशिकीय जीवों, जैसे पादप, जानवर आदि को जन्म देते हैं। कोशिका की संरचना और घटक हमारी आंखों से दिखाई नहीं देते और इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखा जा सकता है। किसी जीव की कोशिका में कई महत्वपूर्ण छोटी आकृतियां होती हैं जिन्हें जीवित रहने और स्वस्थता के लिए विशिष्ट कार्य वाले अंगकों के रूप में जाना जाता है। पादप कोशिका के अंदर मौजूद कुछ महत्वपूर्ण अंगकों में केन्द्रक(नाभिक), हरितलवक, माइटोकॉन्ड्रिया, राइबोसोम, आदि शामिल हैं। केन्द्रक कोशिका के अंदर मौजूद महत्वपूर्ण अंगक है जो एक जीव की आनुवंशिक जानकारी के एक विशाल हिस्से को संग्रहित करता है। इसमें गुणसूत्र नामक संरचनाएं होती हैं जो मुख्यतः डी.एन.ए. और प्रोटीन से बनी होती हैं। आनुवंशिक जानकारी एक व्यक्तिगत जीव की विशेषता है और वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वंशागत होती है। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि बच्चे को माता–पिता से मिली आनुवंशिक जानकारी के अनुसार बच्चा, माता अथवा पिता के समान होता है। स्तनधारियों के समान, पौधे विशेष की संतति आनुवंशिक सूचनाओं के विरासत के कारण मुख्य रूप से उसके पैतृकों के समान होती है। कोशिका में विद्यमान जीवाणु जो एक व्यक्तिविशेष (आनुवंशिक जानकारी) के वंशागत गुण को नियंत्रित करता है उसे–वंशाणु (जीन) कहा गया है। सरल भाषा में कहें तो वंशाणु डी.एन.ए. का एक टुकड़ा (खण्ड) है जिसमें एक अथवा अधिक प्रोटीनों के उत्पादन की जानकारी होती है। प्रोटीन, आर.एन.ए. के माध्यम से वंशाणु के संकेतानुवादित उत्पाद हैं। आर.एन.ए., डी.एन.ए. और प्रोटीन के मध्यवर्ती चरणों में है। प्रोटीन जो बदले में डी.एन.ए. अथवा प्रोटीन अथवा दूसरे जैव अणु पर क्रिया करता है और इसका परिणाम उत्पाद के रूप में होता है यह विशेषक के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए पुष्प का रंग, बीज का आकार, पादप ऊंचाई, पत्ती का रंग, आदि जैसे कोई भी लक्षण डी.एन.ए.–आर.एन.ए. –प्रोटीन के बीच परस्पर क्रिया के कारण होता है जो किसी भी जीव–विशेष की प्रत्येक कोशिका में होता है।

कपास एक प्राकृतिक रेशा (तंतु) के रूप में जाना जाता है जिसका जीवन के सभी क्षेत्रों में उपयोग होता है। यह मानवता के लिए प्रकृति का उपहार है। उपयोगी आर्थिक गुणों के लिए कपास की फसल में सुधार के लिए परंपरागत रणनीतियों का उपयोग लंबे समय से किया जा रहा है। किस्मों, देशज प्रजातियों, आनुवंशिक संग्रहों, वर्नीय जातियों, वंशावलियों, अभिवर्धित प्रजनक वंशावलियों, आदि जैसे विद्यमान *गॉसीपियम* जातियों में आनुवंशिक विभिन्नता पादप प्रजनन द्वारा उत्पन्न की जाती है और उसका उपयोग किया जाता है। सरल शब्दों में, पारंपरिक प्रजनन द्वारा किसी फसल की किस्म में सुधार के लिए वांछित गुणों के लिए जीनप्ररूप की आवश्यकता होती है। जीनप्ररूप की अनुपलब्धता अथवा वंशावली समूह में सीमित आनुवंशिक विविधता के कारण एक पर्यायी विधि अथवा प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। जैवप्रौद्योगिकी ऐसी एक तकनीक है जो विश्वभर में फसल पादपों के सुधार के लिए स्वीकार की गई है जिसे विशेष रूप से पुनःसंयोजक डी.एन.ए. अथवा आनुवंशिक अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है। पुनःसंयोजक डी.एन.ए. प्रौद्योगिकियों का उपयोग आम तौर पर उस समय किया जाता

है जब वंशावली–समूह में लक्षणों में सुधार के स्रोत उपलब्ध नहीं होत हैं। आर–डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी के माध्यम से, ऐच्छिक विशेषकों (गुणों) के लिए योगदान देने के लिए डी.एन.ए. (वंशाणु) के सटीक टुकडे को स्थानांतरित करना संभव है। वंशाणु(जीन) का स्रोत कपास के पौधे से अथवा दूसरी फसल जाति अथवा सूक्ष्मजीवों सहित दूसरे जीव का भी हो सकता है जो हमारी आँखों से दिखाई नहीं देता। डी.एन.ए. रासायनिक रूप से सभी जीवों में समान है और यह केवल क्रमबद्धता और ए–टी, जी–सी न्यूक्लीओटाइड्स का संयोजन है। इस प्रकार, एक जीव में एक गुण विशेष के लिए जिम्मेदार डी.एन.ए. का टुकडा अन्य असंबंधित जीवों में एक ही गुण में परिवर्तन लाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसलिए आर–डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी के लिए वंशाणु का स्रोत कपास का पौधा या अन्य फसल जातियों या किसी भी अन्य जीवों से प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ कहीं भी साध्य और संभव हो, शोधकर्ताओं ने वंशाणु का इस्तेमाल एक ही फसल जाति के बेहतर जीनप्रारूप अथवा विभिन्न फसल जातियों से किया। इसी प्रकार, फसलीय पौधों के विशेषकों में सुधार के लिए अन्य जीवों, जैसे कि, सूक्ष्मजीवों से उपलब्ध श्रेष्ठ वंशाणुओं का पता लगाया गया है। आइए हम, कपास जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, विशेष रूप से कपास रेशे की उपज में सुधार के बारे में कुछ रोमांचक अनुसंधान के बारे में पता करें।

कपास में रेशे (ततु) की उपज में सुधार या तो बीज संख्या या रूई–प्रतिशत में वृद्धि के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। रूई प्रतिशत में वृद्धि का अर्थ छोटे रोंआ (क्यू टी) तंतु की तुलना में रूई के आधेक परिपक्व रेशे (ततु) प्रति बीज होता है। कपास में तंतु विकास कैसे होता है, इसके पीछे की बुनियादी जानकारी प्रश्न–उत्तर के रूप में समझते हैं।

कपास का तंतु (रेशा) क्या है?

बीजावरण से एकल लंबी (दीर्घीकृत) कोशिका ही कपास का तंतु है।

आनुवांशिक जानकारी संततियों में कैसे पहुँचेगी?

प्रकृति में, बहुत से जीव प्रजनन नामक एक प्रक्रिया से गुजरते हैं जिससे वे अपनी ही प्रकार की संतति को जन्म दे सकें। प्रजनन का पहला उत्पाद भ्रूण है। भ्रूण एक विशेष प्रक्रिया द्वारा जिसे निषेचन कहते है, विकसित होता है।

निषेचन क्या है? भ्रूण कैसे बनता है?

नर गेमीटोफाइट (पौधों में पराग/स्तनधारियों में शुक्राणु कहा जाता है) और मादा गेमीटोफाइट (युग्मकोद्भिद) (पौधो में बीजाण्ड और प्राणियों में अंडा के रूप म जाना जाता है) के संयोग की प्रक्रिया को निषेचन कहा जाता है। निषेचन के परिणामी उत्पाद को भ्रूण कहा जाता है। भ्रूण भिन्नता की प्रक्रिया के पश्चात् पूरे जीव को जन्म देता है। स्तनधारियों में, भ्रूण माँ के गर्भाशय में शिशु को जन्म देता है। उसी प्रकार, पौधो में परिपक्व भ्रूण को बीज कहा जाता है जो कि बुआई के बाद पौधो को जन्म देता है जो अपने पैतृकों के समान होते हैं।

नर और मादा गेमीटोफाइट विशिष्ट कोशिकाएँ हैं जो कि निषेचन की प्रक्रिया के द्वारा उनमें विद्यमान आनुवांशिक जानकारी को अपनी संतति में हस्तांतरित करती हैं।

पराग एवं बीजाण्ड क्या है? यह कहाँ मौजूद रहता है?

पुष्प प्रजनन इकाई के रूप मे जाना जाता है। कपास के पौधे में, पुष्प में नर तथा मादा (मातृ) दोनों भाग होत हैं। नर भाग को पुमंग (एन्ड्रोसियम) तथा मादा (मातृ) भाग को जायांग (स्त्रीकेशर / गायनेसियम) कहा जाता है जिसमें बीजाण्ड होते हैं।

कपास में निषेचन

पूरी तरह से खुला हुआ पीले रंग का पुष्प वह अवस्था होती है जहाँ निषेचन होता है। चूंकि नर व मादा भाग अलग–अलग जगह पर स्थित होते हैं, अतः परिपक्व पराग परागकोश से बाहर आएगा और वर्तिकाग्र पर गिरेगा। इस प्रक्रिया को परागण कहा जाता है। परागकण का अकुरण होकर एक लंबी संकरी पराग नली, वर्तिका म होकर बीजाण्ड तक पहुँचकर उसके साथ संयोग करने से निषेचन प्रक्रिया पूरी होती है। यदि कपास के पुष्प का रंग पीले से गुलाबी हो जाता है तो यह निषेचन के पूर्ण होने का संकेत है और तब भ्रूण बन जाता है।

यह समझना दिलचस्प होगा कि गूलर के अंदर तंतु (रिशा) कैसे विकसित होते हैं। पुष्प के निषेचन होने की घटना के बाद अंडाशय गूलर में विकसित होता है। हम केवल गूलर के बढते हुए आकार को ही देखते हैं और अत में गूलर का प्रस्फुटन परिपक्व तंतु (रेशे) में होता है। परिपक्व तंतु प्राप्त करने के लिए गूलर के अंदर होने वाली घटनाओं की श्रृखला है। तंतु के विकास को मोटे तौर पर चार मुख्य चरणों (अवस्थाओं) में वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे, तंतु का प्रारंभ (सूत्रपात), लंबा होना/बढ़ना, द्वितीयक भित्ती संश्लेषण और परिपक्वता। तंतु उपज और गुणता को निर्धारित करने म प्रत्येक चरण (अवस्था) का अपना महत्व है।

तंतु का प्रारंभ : कपास तंतु निषेचित बीजाण्ड की बाहय त्वचा कोशिका का विस्तार है। यह वह अवस्था है जहाँ कोशिकाओं का तंतु बनने के लिए निश्चितीकरण होता है और निषेचित बीजाण्ड की ऊपरी परत से यह उभरना शुरू हो जाता है। यहाँ हमारे मन में एक प्रश्न पैदा होता है, क्या बीजाण्ड बीजावरण की सभी कोशिकाएं तंतु के रूप में बनना प्रारंभ करती हैं ? इसका उत्तर नहीं में है। केवल एक चौथाई यानी 25% कोशिकाएँ रूई तंतु को विकसित करती हैं। ऐसा पाया गया है कि परागण के दिन या उससे पहले शुरू होने वाले तंतु को तंतु (रिशा) में विकसित किया

जाता है जबकि परागण के 4–5 दिनों के बाद प्रारंभ होने वाले तंतु रोएं–तंतु में बदल जाते हैं। यह अवस्था बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि तंतु कोशिकाओं की संख्या में तंतु उपज का सीधा सहसंबंध होगा। परागण के दिन अधिक संख्या में तंतु प्रारंभ होने पर हमें रोएं–तंतु की अपेक्षा अधिक रूई मिलती है। अधिक तंतु उपज प्राप्त करने के लिए हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि उचित समय पर अधिकाधिक तंतु कोशिकाओं का प्रारंभ हो।

तंतु का लंबा होना/बढ़ना : परागण के 6 से 20 दिनों के अंतर्गत तंतु की लंबाई बढती है। यह वह अवस्था है जहां तंतु तीव्र गति से बढता है और उनकी अधिकतम लंबाई (2.5से. से 4.0 सेमी.) तक पहुँच जाती है। इस अवस्था में तंतु की लंबाई का निर्धारण होता है।

द्वितीयक भित्ती संश्लेषण : इस अवस्था में अधिकतम लंबाई में बढे हुए तंतु अधिक से अधिक सेलूलोज के साथ वांछित अभिन्यास में जमा होता है और तंतु को मजबूती देने के लिए दूसरे महत्वपूर्ण जैवअणुओं की नाममात्र अंश के साथ अंतःसंयोजन होता है। परागण के 18 से 30 दिनों पश्चात की अवधि में बडे पैमाने पर सेलूलोज जमा होता है। इस अवधि के दौरान अधिकांश तंतु की शक्ति निर्धारित होती है।

परिपक्वता : इस अवस्था में कोशिकाओं के सूखन और सख्त होने से परिपक्व तंतु उत्पन्न होता है। इसके साथ ही, संपूर्ण तंतु विकास की प्रक्रिया के दौरान निषेचित बीजाण्ड में भी रूपान्तरण होते हैं और इसके परिणामस्वरूप भ्रूण परिपक्व होकर बीज में कायांतरित हो जाता है।

उपर्युक्त से, हमें पता चलता है कि केवल 25–30% बीजाण्ड की बाह्यत्वचा कोशिकाए तंतुओं में विकसित होती हैं। तंतु उपज में सुधार के लिए परिपक्व तंतुओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए तंतु प्रारंभ होने की अवस्था महत्वपूर्ण है। तंतु का विकास कपास के पौधे में बडी संख्या में उत्पन्न होने वाले रासायनिक पदार्थों की पारस्परिक क्रिया के कारण होता है। कपास के पौधे में उत्पन्न होने वाले ऐसे कुछ रसायन जिनका तंतु विकास में बडा अधिप्रभाव है, वे हैं – पादप वृद्धि नियामक जिन्हें पादप–हार्मोन कहत हैं। ये पादप वृद्धि नियामक पौधो द्वारा उपयुक्त अवस्था मे उत्पन्न किए जाते हैं और बहुत कम सांद्रता मे कार्य करते हैं और समग्र वृद्धि और विकास को विनियमित करते हैं। ऑक्सिन, जिब्बरलिक एसिड, एथीलीन, एस्कोर्बिक एसिड और ब्रेसिनोस्टेराइडस कपास मे महत्वपूर्ण वृद्धि नियामक हैं, इन रासायनिक पदार्थों का सही जगह पर, सही समय पर और सही मात्रा मे उत्पादन, वृद्धि और विकास को निर्धारित करता है और इस प्रकार फसल की आर्थिक उपज को प्रभावित करता है। इन सभी पादप विकास नियामकों के लिए रासायनिक तुल्यरूप वाणिज्यिक रूप में विभिन्न ब्रांड नाम के साथ उपलब्ध हैं। रासायनिक तुल्यरूपों के बर्हिजात अनुप्रयोग के माध्यम से, शोधकर्ताओं ने उपज पर इनके प्रभाव का परिक्षण प्रारंभ कर दिया है। वर्ष 2005 में वैज्ञानिकों एवं उनके सह–कार्यकर्ताओ ने ऑक्सिन हार्मोन को कपास की कलियों और पुष्पों पर अनुप्रयोग करने पर प्रति बीजाण्ड तंतु संख्या में उल्लेखनीय सुधार पाया। हाल ही में, वर्ष 2011 में शोधकर्ता उपयुक्त स्थान, उपयुक्त समय और सही मात्रा में आक्सिन हार्मोन का उत्पादन करने में सफल रहे हैं। आर–डी.एन.ए. तकनीक के माध्यम से उन्होने डी.एन.ए. (जैवसंश्लेषित वंशाणु) का एक हिस्सा डी.एन.ए. के दूसरे हिस्से की सहायता से (बीजावरण और बीजाण्ड विशिष्ट प्रमोटर एफबीपी–7) उतक के लिए निर्देशन के साथ ऑक्सिन उत्पादन के लिए उत्तरदायी है यह व्यक्त किया। परागण (उपयुक्त समय) के बाद 2 से 5 दिनों के दौरान बीजाण्डीय बाह्य त्वचा /बीजावरण में ऑक्सिन का सही मात्रा में उत्पादन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप तंतु उपज में 15% की वृद्धि हुई।

जैसा कि हम पहले से जानते हैं कि कपास तंतु (रेशा) मुख्यतः सेलूलोज से बना है। सेलूलोज एक रासायनिक पदार्थ है जो एक विशिष्ट बंधन के साथ ग्लूकोज अणुओं की अधिक संख्या से बना है। प्रकाश ऊर्जा (प्रकाशसंश्लेषण) का उपयोग करके पादप कोशिकाओ में उत्पादित परिवहनीय रसायन सुक्रोज है। एक कोशिका–भित्ती में उत्पादित सुक्रोज का एक स्थान (पत्ती) से दूसरे स्थान (गूलर) में परिवहन होता है। गूलर द्वारा प्राप्त सुक्रोज का ग्लूकोज और फ्रक्टोज में उत्पादन के लिए भेदन से गुजरना पडता है। बाद के चरणों में ग्लूकोज का उपयोग सेलूलोज अर्थात तंतु के संश्लेषण के लिए किया जाता है। इसलिए, आधारीय ग्लूकोज का उत्पादन न केवल तंतु विकास के लिए बल्कि बीज के विकास के लिए भी बहुत आवश्यक है। एक ऐसा एन्जाइम जो कि बीज में सुक्रोज (शकरा) का ग्लूकोज और फ्रक्टोज में विघटित करने में सम्मिलित है, वह सुक्रोज सिंथेज (एस यू एस) है। एक अन्य शोध प्रयास में, शोधकर्ताओं ने वर्ष 2012 में जैवप्रौद्योगिकीय विधि से सफलतापूर्वक फाईलियल उतकों में प्रोटीन सुक्रोज सिंथेज (बीज में पोषक उतक की एक पर्त) का उत्पादन किया और इससे तंतु उपज में 30% वृद्धि दर्ज की गई जिसका श्रेय बीजों की संख्या वृद्धि का जाता है जो संवर्धित बीज–सिंक–मजबूती (शक्ति) के योगदान द्वारा बीज के विफलन में कमी के परिणामस्वरूप दर्ज किया गया।

संवर्धित तंतु गुणता और उपज के लिए फाइटोक्रोम साइलेंसिंग

पौधों के लिए प्रकाश (फोटोन) और कार्बन–डाई–आक्साइड उनका भोजन तैयार करने के लिए प्राथमिक आवश्यकता होती

है। इस प्रक्रिया को प्रकाश सश्लेषण कहा जाता है। वर्ष 2014 में शोधकर्ताओं द्वारा एक रोमाचक शोधकार्य रिपोर्ट किया गया। जिसमे यह पाया गया कि कपास के पोधे में एक रसायनिक पदार्थ (फाइटोक्रोम) के सश्लेषण के साइलसिग के परिणामस्वरूप कपास की उपज आर तंतु गुणता में सुधार होता है।

फाइटोक्रोम क्या है?

'फाइटो' का अर्थ पादप और 'क्रोम' का अथ रग है। यह पौधे द्वारा निर्मित नीले-हरे रग का वर्णक है। ये वणक अणु विशिष्ट तरग दैघ्य (रग) के प्रकाश के लिए अभिग्राहक के रूप में काय करते हैं आर फसलीय पौधों की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक सकेत उत्पन्न करत हैं। ये फाइटोक्रोम मुख्य रूप से बीज अकुरण, पुष्पन आर पादप–संरचना–विकास, जैसे, पत्ती का विस्तार, हरितलवक विकास और तना लबाई वृद्धि में शामिल हैं। विशिष्ट काय करने के लिए पौधे में उत्पादित विभिन्न प्रकार के फाइटोक्रोम (फाइटोक्रोम एए, फाइटोक्रोम बीए, फाइटोक्रोम सीए, फाइटोक्रोम डीए और फाइटोक्रोम इ) हैं। यह रिपोर्ट किया गया है कि अन्य फाइटोक्रोमों की अपेक्षा फाइटोक्रोम बी के उत्पादन मे वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप तंबाकू और आलू में बेहतर उपज मिली है

फाइटोक्रोम ए 1 की साइलेंसिग से गुणता और उपज में वृद्धि कैसे ?

आर.एन.ए. हस्तक्षेप के माध्यम से कपास के पौधे में फाइटोक्रोम ए 1 के साइलसिग करने से दूसरे फाइटोक्रोम, जैसे, फाइटोक्रोम बी 2ए फाइटोक्रोम बी, सी और इ की प्रतिपूरक वृद्धि हुई है। आर एन ए आई के माध्यम से विकसित आनुवांशिक रूप से रूपांतरित पौधो द्वारा अगेती परिपक्वता, ततु लबाई, कपास की उपज जैसे विशेषको में उल्लेखनीय सुधार का प्रदशन हुआ है। आर एन ए आई पौधों में भी ओजपूर्ण प्ररोह और जड में विकास दज किया गया। ततु लबाई में सुधार में फाइटोक्रोम मध्यस्ता हार्मोन सकेतन को उत्तरदायी माना गया है। आर एन ए आई पादपों में ओजपूर्ण प्ररोह एव जड़ विकास के कारण बेहतर सुधारित जल एव पोषकतत्व स्वांगीकरण उपज में वृद्धि (10–17%) का कारण रिपोर्ट किया गया है।

निष्कर्ष :

विज्ञान के कार्यक्षेत्र में जवप्रौद्योगिकी एक रामाचक क्षत्र है जहा पादपों के जटिल विशेषकों में सुधार के लिए बहुत सार अनुसधान प्रयास किए गए हैं जो अकेले पारपरिक पादप प्रजनन के माध्यम से अपेक्षाकृत कठिन है। कार्यक्षेत्र में उत्पाद के लिए जैवप्रौद्योगिकी प्रयोगशाला में उत्तेजना की घटनाओं का उदग्रहण कार्यक्षत्र में उत्पाद के लिए करना एक चुनोतीपूर्ण काय है।

- **त्याग का आदेश महान है और वही जगत में कुछ कर सकता है, जिसमें त्याग की मात्रा अधिक हो।**

  – महावीर स्वामी

- **ब्रह्मांड अपनी सृष्टि स्वयं करता है। स्वयं विघटित होता है। स्वयं अभिव्यक्त भी होता है।**

  – स्वामी विवेकानंद

- **यदि विचारों को सजाकर मधुर ढंग से व्यक्त करने वाला प्राप्त हो तो संसार शीघ्र उसके आदेशों को सुनेगा।**

  – तिरूवल्लुर

13. बीटी संकर कपास की खेती के आदानों की लागत कम करें

- **डॉ. अंबाती रविन्द्र राजू**, प्रधान वैज्ञानिक
- **श्रीमती रचना देशमुख**, वरिष्ठ तकनीकी सहायक
- **श्री प्रणय तिवारी**, यग प्रोफेशनल

फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

कृषि सम्बन्धित रसायनों की अवैज्ञानिक मात्रा को कम करके तथा बेहतर वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा प्रति इकाइ क्षेत्रफल में उत्पादकता मे बढोत्तरी द्वारा ही खेती की लागत कम हो सकती है। खेती की कुल लागत में 41% हिस्सा निविष्टा/आदानों का है तथा 59% हिस्सा कपास मे खरपतवार नियंत्रण व कपास चुनाइ, आदि का है। आदानो की लागत के अंतर्गत बीटी सकर बीज की लागत 39%, उवरकों की 36% तथा खरपतवारनाशको की 18%, खरपतवार प्रबधन की 27% और सूक्ष्म पोषकतत्वों/जैवरसायनों पर लागत 2.5 से 10% के मध्य आती है।

रस चूसक नाशीकीटों/लालपत्ती रोग के लिए सहनशील, प्रति पौधा 40 से अधिक प्रस्फुटित गूलर धारण करने वाला अथवा 120 ग्रा कपास की उपज प्रति पौधा, रू. 5 प्रति कि.ग्रा. कपास चुनाइ खर्च कम करने के लिए 5 ग्रा. कपास प्रति गूलर का गूलर आकार जैसे कपास के सकरो का चुनाव करने में किसानों को दिक्कत आती है। किसान की यह समस्या आरसीएच–659, अजीत–155 और सरकारी बीटी सकर–6 को चुनकर दूर हो सकती है। बीटी सकर कपास एच–6 बॉलगार्ड–II भा.कृ.अनु.प. द्वारा वित्तपोषित गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द द्वारा विकसित की गई है इस बीटी सकर में बारानी परिस्थिति तथा पूरक सिंचाई के अतर्गत 15–20 क्विं/हे. कपास की उपज, 'मेरा गॉव मेरा गौरव' कार्यक्रम के अतर्गत कलमेश्वर में वर्ष 2016–17 के दौरान 25 किसानों के खेत में रिकार्ड की गई।

कलमेश्वर तालुका क्षेत्र में मिश्रित उर्वरको की मृदा अनुप्रयोग विधि का अधिकांश किसान अनुसरण कर रहे हैं। यहां मृदाएं ज्यादातर चूनायुक्त हैं। चूनायुक्त मृदाओं मे भी बुआई के 45 दिनों बाद मिश्रित उर्वरको का मृदा अनुप्रयोग न करें। आधार मात्रा के रूप मे प्रति एकड़ 10:26:26 की 1.5 थैली अथवा 12:32:16 की एक थैली उर्वरक, तिफन से खेत मे लाइन खींचते समय मिटटी में दें। बुआई के 20 दिनों पश्चात उर्वरकों की मात्रा मृदा अनुप्रयोग के रूप में दें। आधी बैग यूरिया की 2 या 3 विभाजित मात्रा के रूप में बुआइ के 45 तथा 60 और 75 दिनों पर पौधों के पास गड्ढ़ा खोदकर दे अथवा बैलों से गुड़ाई के समय मृदा अनुप्रयोग करें।

दो से तीन वर्षों में एक बार सूक्ष्म पोषकतत्वों मैग्नीशियम तथा जिंक सल्फेट प्रत्येक 8 किग्रा तथा बोरेक्स 2 किग्रा. प्रति एकड़ की दर से मृदा अनुप्रयोग (लागत रू. 520 प्रति एकड़) करने से कपास की उपज में 01 क्विं प्रति एकड़ की वृद्धि होती है। यदि इनका अनुप्रयोग नहीं किया गया है और इनकी कमी के लक्षण पौधों/फसल पर दिखाइ देते हैं तो इनकी कमी को चीलेटेड अथवा सामान्य सूक्ष्म पोषकतत्वों का बुआई के 25 से 75 दिनों की अवधि मे 2 से 3 बार फसल पर छिडकाव द्वारा पूरा किया जा सकता है। पानी मे घुलनशील उर्वरकों या कीटनाशकों या फफूँदनाशकों के साथ फसल पर छिडकाव किया जा सकता है। चीलेटेड के लिए रु. 400/- तथा सामान्य सूक्ष्म पोषकतत्वों के लिए रु. 100/- प्रति एकड़ लागत आती है। इससे पत्तियां हरी और ताजी, सिकुड़न से मुक्त दिखाई देंगी तथा इसके साथ ही, जैसिड तथा फुलकीट(थ्रिप्स) जैसे रसचूसक कीटों का भी नियंत्रण होता है। यह तथ्य स्वय किसानो द्वारा बताए गये हैं।

मुख्य, गौण एवं सूक्ष्म पोषकतत्वों की आपूर्ति फसल पर छिडकाव द्वारा बुआई के पश्चात 25 से 100 दिनों के मध्य पानी मे घुलनशील नत्रःफास्फोरसःपोटाश 2% की दर से; नत्रःफास्फोरस तथा नत्रःपोटाश 15 दिनों के अतराल पर तीन बार में कीटनाशकों और फफूदनाशकों के साथ करें। इससे इन घटकों की कमी को कुछ हद तक पूरा किया जा सकता है और समय पर नाशीकीटों का ग्रसन व रोगों के प्रकोप को समय पर नियंत्रित किया जा सकता है। एनपीके 19:19:19/18:18:18 एनपी 12:61:0 (मोनो सोडीयम फॉस्फेट), पीके 0:52:34 (मोनो पोटेशियम फ़ॉस्फेट

नाईट्रेट)/एन के पोटेशियम नाईट्रेट (13:0:45) और 0:0:50 सल्फेट ऑफ पोटाश के प्रयोग से हल्की अथवा मध्यम मृदाओं में अथवा जहां बारानी व सिंचित परिस्थिति में सूक्ष्म पोषकतत्वों के साथ आवश्यक मात्रा से कम उर्वरक प्रयोग किए जाते हैं वहां कपास की उपज में 2 से 3 क्वि. प्रति हक्टर की वृद्धि दर्ज की गई है। यदि बोरोन, जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट भी 0.25 से 0.5% तक उपयुक्त उर्वरकों के साथ मिलाए जाते हैं तो लाल पत्ती रोग भी देरी से आता है। कपास की प्रारंभिक धीमी वृद्धि को बढाने के लिए किसी के भी द्वारा सिफारिश किए गए जैवरसायनो और दूसरे पादप–टानिकों अथवा उनके संयोजनों का छिड़काव न करें। इससे आपकी लागत में 30% कमी आएगी।

खरपतवार नियंत्रण में खेती की कुल लागत का 27% खर्च होता है जिसे अंकुरण–पूर्व पेंडीमेथालिन के छिड़काव तथा बुआई के 35 दिनों पश्चात क्लोरीम्यूरान इथाइल 1.5 मिलि + 27 मिली प्रोपेक्वीजाफोप का प्रति 15 लिटर पानी में अनुप्रयोग करके 18% तक लाया जा सकता है। यदि कपास 10% के स्तर तक सूखी नहीं है तो न्यूनतम समर्थन मूल्य (रू. 42/- प्रति किग्रा) से कम कीमत पर किसान को कपास का भाव मिलेगा। जिससे उसे नुकसान होगा। इस प्रणाली का प्रदर्शन बीसीआर 2.0 के साथ आइएनआर रू. 13,500/- का शुद्ध लाभ प्रति एकड़ उत्पन्न करने के लिए किया गया।

- **जो बुद्धिमान है उसे सभी प्रकार के बल प्राप्त हैं। वह सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का मुकाबला सहजता से करते हुए उन पर विजय प्राप्त कर लेता है।**

- चाणक्य

- **पढ़ना तो बहुत जानते हैं, पर क्या पढ़ना है, यह कोई नहीं जानता।**

- प्रेमचंद

- **स्मृति पीछे नजर डालती है, आशा आगे की ओर।**

- अज्ञात

- **व्यक्ति को जरूरत से ज्यादा सरल व ईमानदार नहीं होना चाहिए। सीधे तने के पेड़ सबसे पहले काटे जाते हैं।**

- चाणक्य

- **स्त्री पुरुष की सहचरी है जो किसी भी दृष्टि से उससे कम नहीं है।**

- महात्मा गाँधी

- **कृषि में खरपतवार हटाना उतना ही आवश्यक है जितनी की बुआई जरूरी है।**

- महात्मा गाँधी

14. पौधों की जड़ो मूलों पर केन्द्रित दूसरी हरित क्रांति

डॉ. जयंत एच. मेश्राम, प्रधान वैज्ञानिक
फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प. - केन्द्रीय कपास अनुसधान संस्थान, नागपुर

पौधों की वृद्धि तथा विकास के लिए जड़ें (मूल) बहुत महत्वपूर्ण अंग हैं। जडें पौधे को यांत्रिक सहारा देने के साथ ही वृद्धिशील पौधे के लिए रासायनिक निकर्षक भी प्रदान करती हैं। जडो की संरचना मूल प्रकारो के संग्रह से निर्मित होती हैं जो विषमागी मृदा में कालगत एव स्थानगत वितरण को भी निर्धारित करती हैं तथा चल व अचल ससाधन प्राप्त करने की योग्यता भी जडो पर निर्भर करती है। दूसरी हरित क्रांति के आव्हान के साथ खाद्यान्न उत्पादन बढाने तथा दीर्घकालिकता की ओर बढने के लिए जड़ों के विशेषकों (लक्षणों) को अभी हाल ही में महत्व दिया जा रहा है जो पहले परिदृश्य स ओझल थे।

जड़ प्रणाली संरचना (आर.एस.ए.) : पौधे की जड़ें विशेषरूप से उनकी जड प्रणाली संरचना पौधे की आवश्यक प्रक्रियाओं म महत्वपूण भूमिका निभाती है, जो इस प्रकार हैं:

* पादय स्थिरण
* जल उद्ग्रहण का स्थल
* खनिज एव पोषकतत्वों के उद्ग्रहण का स्थल
* अधिकांश आयनो का उद्ग्रहण स्थल
* पोषकतत्वों के सग्रहण का स्थल
* प्राथमिक स्थल जहाँ अनेकों जैविक–भू–रासायनिक एव सूक्ष्मजीवी प्रक्रियाएं सम्पन्न होती हैं।
* वायुमण्डलीय कार्बन उद्ग्रहण को पुनः मृदा में जाने के लिए स्रोत

सामान्य रूप से जड़ प्रणाली संरचना (आरएसए) को मोटे तौर पर दो प्रकारों मे वर्गीकृत किया जा सकता है–मूसला एव तंतुमय जड प्रणाली। द्विबीजपत्री पौधो मे सामान्यतः मूसला जड प्रणाली होती है जिसमें एकल भ्रूण से प्राथमिक जड़ें व्युत्पन्न होती हैं जिसके बाद पश्चभ्रूणिय पार्श्वीय जडों (एलआर) का विकास होता है। द्विबीजपत्रियों के उदाहरण मे मॉडल पादप *एराबिडोप्सिस* तथा कपास हैं। इसकी तुलना मे, दूसरी आर एकबीजपत्री पौधों में तंतुमय जड प्रणाली पाई जाती है जिसम बहुगुणित भ्रूणीय व्युत्पन्न प्राथमिक जडों (पीआर) का समावेश होता है। इसके पश्चात सेमीनल जडों (एसआर), भ्रूण पश्चात प्ररोह जनित जडों और पार्श्वीय जड़ों (एलआर) का विकास होता है। एकबीजपत्री के उदाहरण हैं – गेहूं, मक्का, धान तथा घास समूह। जड प्रणाली संरचना का आंशिक निर्धारण पादप के जीनप्रारूप से होता है तथा वृद्धिशील जड के परिवेश द्वारा बहुत प्रभावित होता है। जड़ के इस परिवेश मे मृदा सरचना, जल, नत्र, फास्फोरस, संकेत, तथा वृद्धिशील जड़ के सहयोगी मृदा सूक्ष्मजीव समूह द्वारा प्रदत्त उपापचयजों आते हैं।

यद्यपि मृदा जड़–पुंज में विविध सूक्ष्मजीव समुदाय रहते हैं, इन पादप जड़ों (जड क्षेत्र) के साथ सूक्ष्मजीव समुदाय में विविधता काफी कम होती है लेकिन दोनों, यानी कुल जनसख्याओं (10^{1}–10^{4} कोशिकाए प्रति ग्राम जड क्षेत्र मृदा) एव विशिष्ट संपूर्ण समुदाय के उप–समूहो में उल्लेखनीय रूप स अधिक होती है। जड क्षेत्र 03 कार्यात्मक उपखण्डों से निर्मित होता है– अंतः जड क्षेत्र, मूलतलीय तथा बाह्य जड क्षेत्र। पौधों की जड़ें अपने मृदा परिवेश मे स्राव, वाष्पशील पदार्थ, उपापचयी रूप से सक्रिय जड सीमांत कोशिकाए तथा अतिरिक्त पॉलीमर्स छोडती रहती हैं। ऐसा आकलन किया गया है कि लगभग 10–25 मि.ग्रा. स्थिर कार्बन प्रति ग्राम जड निकालती है जो उनकी कुल प्रकाशसंश्लेषित स्थिर कार्बन का 10–40% के मध्य निरूपित करती है। यह अभी आश्चर्यजनक नहीं रहा कि जड़ें अब दूसरी हरित क्रान्ति की मुख्य आधार मानी जा रही हैं।

जड़ स्वास्थ्य : 'जड़ें' दूसरी हरित क्रान्ति की कुंजी है। जड़ स्वास्थ्य तथा बढ़ी हुई उपज मे स्पष्ट सबध, प्रतिकूलता को

अंतर्गत, फसलों के उपज स्तर को बढाने का कारण समझा गया है। जड़ स्वास्थ्य को जोखिम में डालने वाले अदृश्य रोगजनक समस्या का मूल कारण है। जडों के दो मुख्य कार्य है : 1) पौधे को मिट्टी में स्थिर रखना, तथा 2) एक बड़ा पृष्ठीय क्षेत्र प्रदान करना जो कि मूलरोमों की उपस्थिति से बढ जाता है। अन्ततः जल तथा पोषकतत्वों का उद्ग्रहण एवं अवशोषण के लिए सक्षम बनाना। जड़ों की संरचना तथा वृद्धि स्वभाव का पादप के आकार, कुछ मृदाओं के प्रति अनुकूलन तथा कृषि क्रियाओं के प्रति अनुक्रियाओं पर एक निश्चित प्रभाव होता है। पादप स्वास्थ्य में उनकी उपयोगिता के लिए जडों पर ध्यान नहीं दिया गया। एक अनुमान के अनुसार सभी पौधों की 80% समस्याएं मृदा/जड की समस्याओं से प्रारंभ होती हैं। अधिकांश पौधों की जड़ें रोगजनक फफूद तथा सूत्रकृमियों के लिए संवेदनशील हैं, लेकिन इस प्रकार के जीवों के प्रभाव पर ध्यान नहीं जाता जब तक कि प्रकोप पर्याप्त गभीर न हो जो फसल के असफल होने का कारण बने। बहुधा ऐसे प्रभाव फसलसत्र के अंत में ही ध्यान में आते हैं जब किसान उपज के उल्लेखनीय नुकसान का सामना करता है। जड जैविकी तथा जड–सूक्ष्मजैविकी को समझन के पश्चात अनेक अजैविक तथा जैविक प्रतिकूलताओं के दायरे से ऊपर जल उपयोग दक्षता, पोषकतत्व उद्ग्रहण तथा रोगजनक नियत्रण में सुधार के लिए जड की क्रियाशीलता बढ़ाने से जड़ क्षेत्र के जीव समुदाय के मध्य समन्वय को बढ़ाने की क्षमता में सुधार होगा।

जड़ प्रणालियाँ दूसरी हरित क्रान्ति का आधार हैं। वृद्धि की प्रतिकूल अवस्थाओं में भी फूलने–फलने वाली फसलों पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। प्रथम हरित क्रान्ति का प्रयास बौने गेहूँ व धान के पौधे विकसित करने पर था जो भरपूर उर्वरक देने पर बेहतर वृद्धि कर सके। यह हरित क्रान्ति उन फसलो पर आधारित थी जो उच्च मृदा उर्वरता के लिए अच्छा प्रतिसाद दे सके। दूसरी ओर, दूसरी हरित क्रान्ति उन फसलों पर आधारित होगी जो निम्न मृदा उर्वरता के प्रति सहनशील हों। अवनत दर्जे के पर्यावरण में 10 बिलियन मनुष्यों को संपोषित करना 21वीं शताब्दी की चुनौती है। अधिक लचीले तथा कम संसाधनों की आवश्यकता वाली कृषि प्रणालियों का विकास करना इस चुनौती का सामना करने के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगा। मृदा एक गतिशील, जीवित नैसर्गिक परितंत्र है जो जीवाणु, फफूद, सूत्रकृमि व अनेको दूसरे जीवों के साथ विभिन्न प्रकार के जीवित जीवों के बाहुल्य का निवास स्थान है। जीवों की विभिन्न जनसंख्याओं का संतुलन अति नाजुक होता है। कृषि पद्धति, उर्वरक, तथा जीवनाशकों के उपयोग, आदि के फलस्वरूप रासायनिक तथा जैविक संघटन में मामूली बदलाव के कारण इस जटिल परितत्र में रोगजनक जीवों के प्रभावी हो सकते है। जब इस प्रकार की प्रबलता होती है तो इसका परिणाम उल्लेखनीय फसल हानि में सामने आता है जो सूखा, अत्याधिक मृदा नमी, कम तापमान, अधिक लवणता, आदि जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बहुधा बढ जाता है। शून्य–जुताई प्रणालियों से बहुत लाभ मिलने की संभावना नहीं होती और न ही ये साधन जुताई की प्रणालियों के साथ मेल खाती हैं, जैसे कि, कम मानव श्रम की आवश्यकता, ईंधन की बचत, उन्नत दीर्घकालीन उत्पादकता, कम मृदा कटाव, अधिक मृदा नमी धारण तथा मृदा पर्त कठोरता में कमी। शून्य जुताइ विधियाँ मृदा के साथ ज्यादा छेड़छाड़ नहीं करती हैं ओर ऊपरी पर्त में काबनिक पदार्थ की पर्त रहने से मृदा–जनित रोगों की व्यापकता को बढा सकती हैं। इससे जड स्वास्थ्य का जोखिम बढ़ता है। शून्य जुताई विधि भौतिक रूप से, जैविक रूप से तथा संरचनात्मक रूप से, मृदा तापमान तथा नमी सूक्ष्मजीवों के मध्य प्रतिस्पर्धा तथा मृदा की अस्त–व्यस्तता को प्रभावित करके खेत के स्थानीय पर्यावरण को बदल देती है। इनसे रोगों का परिदृश्य परिवर्तित हो जाने से इसने व्यापक बहुप्रभावी फसल संरक्षण को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। जैसे कि, राइजोक्टोनिया विशेषतः, खाद्यान्न फसलों (गेहूँ, धान) के लिए गंभीर चुनौती है।

पादप–जल संबंधों पर दशकों के गहन अध्ययनों के पश्चात पैदा हुए प्रश्न का सर्वसम्मत उत्तर अभी तक नहीं मिला है। जिस क्रियाविधि के द्वारा पौधे सूखती जा रही मृदा का बोध करते हैं उसके लिए पत्तियो में द्रवचालित संकेत तथा जडों में रासायनिक संकेत, दोनों मजबूत प्रत्याशी हैं। मृदा जल प्रतिबल के प्राथमिक पादप सवेदक के बारे में विश्व स्तर के दो बहुत अनुभवी पादप शरीरक्रिया वैज्ञानिको डा. पी. जे. क्रेमर एव डा. जे. बी. पेशिओरा अपना विपरीत दृष्टिकोण रखते हैं। शुष्क होती जा रही मृदा का बोध पादप जिस क्रियाविधि से करते हैं उसके बारे मे हमारी समझ काफी कम है और यह पादप शरीरक्रिया विज्ञानियों की वर्तमान पीढी के लिए एक बेहतर अनुसधान करने की आवश्यकता को दर्शाता है। यद्यपि, मृदा जल संग्रहण के लिए पौधे कैसे व्यवहार करते हैं, इस सबंध में हमारी समझ को और गहरा करने और इस सबध में आगे बढ़ने के लिए समर्थ बनने और इस समस्या के निदान के लिए भावी अनुसंधान परियोजनाओं के अंतर्गत हमें नई परिकल्पनाओं के साथ आगे बढ़ना होगा। नई परिकल्पनाएँ विश्व के बारे में हमारे दृष्टिकोण को चुनौती देती हैं। मृदा जल कमी के साथ पौधे कैसे व्यवहार करते हैं, इस पर हमारी समझ में सुधार एव वृद्धि होने में अभी कुछ समय ओर लगेगा।

मानक तकनीकों का प्रयोग करते हुए उथली जड़ें, फैलने वाली जडें जो अनुर्वर मृदा में भी बेहतर वृद्धि करती हैं इनका परिमाणन किया जा सकता है। पादप जो अधिक मूल रोम उत्पन्न करते हैं, उन्हे प्रतिबल/प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक अनुकूलित समझा जाता है। उथली जडों का उत्पादन में लगभग 600% योगदान तथा बढे हुए मूल रोमों में 250% की बढोत्तरी का योगदान होता है। चीन में, उथली जड़ प्रणाली के साथ सोयाबीन

की 07 वंशावलियों का चुनाव किया गया जो हल्की मृदाओं तथा फास्फोरस की कमी वाली मृदाओं के लिए बेहतर हैं। उथली जड़ों वाला पौधा सूखा के लिए अधिक संवेदनशील होता है। मक्का की जड़ों का गहरा जड़ विकास होता है, लेकिन अधिक संख्या में जड़ों का निर्माण करना पौधा के लिए खर्चीला है। जलमग्नता प्रवण क्षेत्रों में पौधे की जड़ें वायूतक विकसित करती हैं। इन खोखली कोशिकाओं सहित जड़ें पौधों को उत्पन्न करने उपापचय की दृष्टि से कम खर्चीली होती हैं। वायूतक के साथ जड़ें सूखे के दौरान बेहतर होती हैं क्योंकि वे सूखी मृदा से नमी प्राप्त करने के लिए गहरी जड़ों का निर्माण कर सकती हैं।

जड़ के लक्षणों पर अभी हाल ही के अनुसंधान कार्य, पौधे सूखा तथा कम मृदा उर्वरता के प्रति कैसे अनुकूलन करते हैं, इस बारे में हमारी समझ को और बढ़ाते हैं। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि सभी पौधे स्थलीय परितंत्र में अनुकूलतम से कम पानी तथा पोषकतत्वों की कम उपलब्धता अनुभव कर रहे हैं। इससे आगे, जलवायु परिवर्तन मृदा उर्वरता में ह्रास तथा प्रतिकूलता में वृद्धि हो रही है। खेत में हजारों पौधों की जड़ संरचना के प्रमाणन के लिए हमें साधन विकसित करने की आवश्यकता है जिससे जड़ लक्षण प्रारूप द्वारा मृदा संसाधन उपयोग के निर्धारण के लिए खेत में उगाई गई जड़ों से एकत्र हजारों नमूनों के शरीर–रचना लक्षण प्रारूप को मापा जा सके।

पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना उपज में वृद्धि के लिए पादप प्रजनक अपना ध्यान जड़ों की तरफ केन्द्रित कर रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पहले जड़ों की तरफ ध्यान नहीं गया और अभी तक कृषि वैज्ञानिकों के लिए ये दृष्टि से ओझल रहीं। बढ़ती खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्व की रणनीति वर्तमान में कारगर नहीं है। दूसरी हरित क्रान्ति के लिए जड़ें महत्वपूर्ण हैं। महँगे आदानों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। पादप के लिए आवश्यक जल तथा पोषकद्रव्य, ये दोनों अत्यावश्यक एवं सीमाकारी कारक भी, जड़ें उपलब्ध कराती हैं।

डिजाइनर जड़ों की आवश्यकता : जड़ें तब सर्वाधिक दक्ष होती हैं जब उनकी संरचना को उनके परिवेश के अनुसार रूपांतरित कर दिया जाता है। गहरी जड़ें शुष्क मृदाओं के नीचे से भी पानी का उपयोग कर सकती हैं, जबकि, महीन, उथली जड़ें मृदा की ऊपरी पर्त का उपयोग कर लेती हैं जिसमें पोषकतत्वों की कमी होती है। गेहूं की वंशावलियों के ताजा अध्ययनों में अनेक वैज्ञानिक दलों ने पाया कि कुछ वंशावलियों की जड़ें दूसरी की अपेक्षा 25% अधिक गहराई में प्रवेश करती हैं। इस दल द्वारा गहरी जाने वाली तथा तेजी से बढ़ने वाली जड़ों सहित वंशावलियों को लोकप्रिय कृषित किस्मों के साथ संकरण करके 400 नई गेहूँ की वंशावलियाँ विकसित कीं, जिनका अभी भारत तथा आस्ट्रेलिया में खेत में परीक्षण चल रहा है। इस दल ने आशा व्यक्त की है कि विकसित किए गए चिह्नको की सहायता से बीज से ही पहचानकर यह संभव हो सकेगा कि गेहूँ की कौन सी किस्मों की जड़ें गहरी हैं। इसके लिए श्रमसाध्य पौध उगाकर उनकी जड़ों को पूरी लंबाई/गहराई में खोदकर उनकी लंबाई नापने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जल सीमित होने पर, मक्का की जिन वंशावलियों की जड़ों के ऊतक में अंतःकोशिका वायु स्थानों का समावेश होता हैं उनमें उन पौधों की तुलना में जिनमें यह क्षमता नहीं हैं, आठ गुणा अधिक उपज प्राप्त की गई। प्रतिबल की स्थिति में, जड़ ऊतक में अधिक वायु का समावेश करके तथा बचत की गई ऊर्जा को अन्न (बीज) में लगाने के लिए छोड़कर, वृद्धिशील नवीन जड़ ऊतक की उपापचयी लागत को पौधे कम कर देते हैं। जड़ संरचना संबंधी अनुसंधान अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है लेकिन खाद्यान्न फसलों में नवीनतम जीन अभिव्यक्ति अध्ययनों से वंशाणुओं (जीन) की अति अभिव्यक्ति एलनाइन अमीनो एसिड (नत्र अंतर्विष्ट) संश्लेषण में सम्मिलित अतिअभिव्यक्ति सामने आई है। इस समय उर्वरक के रूप में अनुप्रयुक्त नत्र का सिर्फ 40–50% ही पौधे को मिलता है। अप्रयुक्त नत्र न केवल व्यर्थ चला जाता है, बल्कि इससे झीलें एवं जलधाराएं (नदी–नाले) भी प्रदूषित होते हैं। अतः हमें ऐसे पादप–प्रकार की आवश्यकता है जो फसलसत्र के प्रारंभ में ही इसकी पर्यावरण में हानि होने से पहले ही नत्र ग्रहण कर ले। इस प्रकार यह नत्र पौधे में संग्रहित रहेगी और बाद में फसल वृद्धि अवस्था में आवश्यकता के अनुसार पुनः संचरित होकर पौधे को मिलेगी।

पादप जड़ें किस प्रकार मृदा जलमग्नता का बोध एवं प्रतिक्रिया करती हैं ?

मृदा में जड़ों की वृद्धि तथा शाखायन से ही पौधा, जल एवं पोषकतत्व ग्रहण करता है। इस भूमिगत क्रियाशीलता के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः जड़ों में उच्च श्वसन दर की आवश्यकता होती है। इसके लिए मृदा छिद्रों में विद्यमान प्राणवायु (आक्सीजन) का उपयोग होता है। यदि मृदा जलमग्न है तो प्राणवायु की कमी उत्पन्न हो जाती है क्योंकि प्राणवायु का विसरण कुछ मात्रा में पानी में भी होता है। इससे जड़ों में तथा पूरे पौधे में भी गंभीर प्रतिबल उत्पन्न होता है। इससे कई पौधों में जड़–पानी पारगम्यता में कमी आती है। इस प्रकार जलमग्न मृदा में उगे हुए पौधों को जलीय अंश की कमी का सामना करना पड़ता है, जिससे पत्तियां मुरझा जाती हैं। कपास की पत्तियों और जड़ों में जलमग्नता के लिए वैश्विक वंशाणु अभिव्यक्ति अनुक्रिया से जड़ ऊतकों में 4 घंटे की जलमग्नता के बाद 1012 वंशाणुओं के सम्मिलित होने का पता चला है। इनमें से कई वंशाणु कोशिका भित्ती रूपांतरण तथा वृद्धि पथक्रम, ग्लाइकोलाइसिस, किण्वन, माइटोकॉन्ड्रियल इलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट तथा नत्र उपापचय से संबद्ध पाए गए।

कपास की फसल में जड़ों के अध्ययन में नवीनतम जानकारी

कपास एक प्रमुख नकदी फसल है जो भारत में बारानी परिस्थिति मे उगाई जाती है। यह फसल खेत में जलवायु के उतार–चढ़ाव के कारण, जैसे, सूखा, जलमग्नता, लवणता व उष्मता प्रतिकूल जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करती है जिससे फसल वृद्धि व उत्पादकता दुष्प्रभावित होते हैं। कपास के पौधे में मूसला जड़ होती है जो तेजी से बढ़ती है जो पौध प्रकटन से पहले 20–25 सेमी की गहराई तक जा सकती है। जड़ प्रणाली की गहराई सामान्यतः लगभग 200–250 सेमी तक जाती है जो मृदा नमी, वातन, तापमान तथा किस्म की आनुवांशिक क्षमता पर निर्भर करती है। कपास में जड़ों की अगेती (शीघ्र) वृद्धि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बुआई पश्चात पहले 30–40 दिनों में एक अच्छी तरह से विकसित मूसला जड़ प्रणाली सामान्यरूप में अधिक उपज की गारंटी है। यद्यपि, खेत की परिस्थिति में कपास के पौधों के जीवन की अवधि में विभिन्न अजैविक प्रतिकूलताएँ एक के बाद एक अथवा क्रमिक आती रहती हैं जिनका सार्थक अभिप्रभाव पादप वृद्धि तथा उपज पर पड़ता है। कपास भारत में विभिन्न गहराइयों की मृदा में उगाई जाती है। यह देखा गया है कि उथली मृदाओं की तुलना में गहरी काली मृदाओं में इनकी जलधारण क्षमता बेहतर होने के कारण कपास की उत्पादकता अधिक मिलती है। अजैविक प्रतिकूलताओं, जैसे, सूखा, लवणता, और जलमग्नता से संबंधित जड़ लक्षणों के लिए आनुवांशिक विविधता का अभिलक्षण वर्णन बहुत सीमित है। बहुगुणित पर्यावरणीय प्रतिकूलता के प्रति अनुक्रिया में कपास के संदर्भ में भिन्नता, भावी जलवायु परिवर्तन के साथ मुकाबला करने की क्षमता सहित सर्वश्रेष्ठ जीनप्रारूपों के चयन की संभावना को इंगित करती है। मूसला जड़ की अधिक लंबाई तथा पर्याप्त पी–एच स्तर बनाए रखना, कड़ी पर्त को हल्का करने, उचित निकासी (उथली जड़ विकास को रोकने में मदद के लिए) जैसी विशिष्टताओं वाले मजबूत जड़ प्रणाली सहित कपास के पौधे भावी किस्मों के लिए आवश्यक हैं। विस्तृत अनुसंधानों से यह प्रदर्शित होता है कि पौधे की जड़ों में जल उदग्रहण प्राथमिक रूप से स्थूल मृदा तथा जड़ अंतस्थ के मध्य जल की अंतर्निहित प्रवणता की अनुक्रिया के रूप में होता है। जड़ लंबाई सघनता (आर.एल.डी.) द्वारा नमीयुक्त तथा शुष्क मृदाओं दोनों परिस्थितियों में जल उदग्रहण का अनुपात निश्चित होता है। कपास में अपस्थानिक जड़ें तथा अति वृद्धिशील लेंटीकल रचना जल आधिक्य के प्रति एक आकारिकीय अनुकूलन अनुक्रिया है। जलमग्न मृदा की वायु रहित परिस्थिति के अंतर्गत जड़ों की लंबाई वृद्धि अवरोधित की जाती है। जड़ की दूसरी अनुक्रिया है परिवर्तित जड़ संरचना जो पार्श्व जड़ों के विकास को कम करके मृदा गुणों में बदलाव का सामना कर सकती है। अवमृदा ठोसापन (कड़ी पर्त) बढ़ने से जड़ शुष्क जैवपदार्थ में वृद्धि कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप जड़ वृद्धि में रुकावट आती है। मृदा की स्थानगत तथा कालगत विषमता, बहुगुणित पैमाने पर मृदा और जड़ के मध्य पारस्परिक क्रिया, एवं बिल्कुल भिन्न पादप विशेषों के संयोजन की आवश्यकता समेकन को विशेष रूप से कठिन बनाते हैं। मृदा–पादप प्रतिरूपों के कार्यात्मक–संरचनात्मक विकास के साथ, जड़ प्रणाली जैविकी आंकड़ों के बड़े परिमाण को जैविकीय प्रश्नों के पार परिमाप और विषयों में रूपांतरित करने के लिए अनोखे विश्लेषणात्मक साधन ला रही है। हमें विश्वास है कि नई जड़ प्रणाली अन्यत्र ही प्रारूप संपूर्ण फसलचक्र के दौरान तथा लागत–लाभ के ढाँचे में प्रणाली स्तर के विश्लेषण के जल प्रवाह के अनेक निर्धारकों से एक अधिक विस्तृत और मात्रात्मक विचार से उभरकर सामने आ सकता है।

- शिक्षा का उद्देश्य हमारी अन्तर्दृष्टी को परिपक्व, दृष्टिकोण को व्यापक और विचारधारा को अर्थपूर्ण बनाना है।

  \- डॉ. एस. राधाकृष्णन

- हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्यवाहियाँ अपनी–अपनी प्रांतीय भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्यवाहियों की भाषा हिंदी होनी चाहिए।

  \- महात्मा गाँधी

- पाँच वर्ष तक पुत्र को प्यार करें, दस वर्ष तक पुत्र को अच्छे मार्ग पर चलाने के लिए दण्डित कर सकते हो, लेकिन सोलह वर्ष के बाद पुत्र को मित्र की भांति स्वीकार कर लो।

  \- चाणक्य

15. भारत में कपास की चुनाई का मशीनीकरण

इंजि. गौतम मजूमदार, वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. रामकृष्ण जी.आई., वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. पूजा वर्मा, वैज्ञानिक
डॉ. ब्लेज डिसूजा, विभाग प्रमुख
फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

भारतवर्ष में उगाये जाने वाली महत्वपूर्ण फसलों में कपास का अपना एक प्रमुख स्थान है। यह फसल किसानों के लिए एक वाणिज्यिक फसल के रूप में जानी जाती है। इसका उत्पादन भारत के उत्तरी, दक्षिणी एवं मध्य भारत में विशेषकर रूप से होता है। कपास ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के लिए आजीविका का मुख्य साधन है। परंतु कपास की खेती में किसानों द्वारा साझा की गयी परेशानियों में कपास की चुनाई एक प्रमुख समस्या है। क्योंकि कपास की चुनाई के लिए बहुत मजदूरों की जरूरत होती है। इसके अलावा कपास जितना साफ चुना जाता है अर्थात कपास में कपास की सूखी पत्तियाँ, डंठलों इत्यादि नहीं होने से बाजार में कपास की कीमत उतनी ही अच्छी मिलती है। इन सब समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कई अभियंता, सस्य विज्ञान एवं पादप कार्यिकी से जुड़े हुए शोधकर्ताओं ने कृषि यंत्रीकरण की दिशा में काम करना शुरू किया जिसका संक्षेप में वर्णन नीचे दिया जा रहा है। कृषि यंत्रीकरण अनिवार्य रूप से संसाधनों, उपकरणों, मशीनों और बिजली स्रोतों का एक विवेकपूर्ण मिश्रण है। पूरे विश्व में कपास उत्पादन में यंत्रीकरण से होने वाले स्पष्ट लाभ के कारण इसे सबसे महत्वपूर्ण निवेश माना गया है। कपास की चुनाई के लिए प्रयुक्त यंत्र को कपास हार्वेस्टर भी बोला जा सकता है। बस कपास की हार्वेस्टिंग अन्य फसलों से इसलिए भिन्न एवं विशेष है क्योंकि इसमें फसल की पूर्ण कटाई होने की जगह कपास के फूटे हुए गूलरों से केवल कपास की चुनाई होती है।

कपास की चुनाई के लिए प्रौद्योगिकी और उपकरण

कपास की चुनाई के लिए समय समय पर कई प्रकार के यंत्रों का आविष्कार किया गया है जिन्हें आवश्यकतानुसार सुधारा भी गया है। यह आविष्कार एवं सुधार एक निरंतर प्रक्रिया है। वर्तमान समय में कपास के दो प्रकार के हार्वेस्टर मुख्य रूप से मिलते हैं, अर्थात् बीनने वाले हार्वेस्टर और स्ट्रिपर्स हार्वेस्टर। यांत्रिक रूप से कपास की चुनाई करने वाले यंत्र चयनात्मक होते हैं अर्थात बीज–कपास को खुले बीजकोषों से चुन लिया जाता है, जबकि पौधे पर हरे और बिना खुले बीजकोषों को बाद में चुनाई के लिए परिपक्व होने के लिए छोड़ दिया जाता है। अधिक उपज वाले क्षेत्रों में और अन्य क्षेत्रों में जहां गंभीर मौसम के खतरे के कारण जल्द से जल्द चुनाई शुरू करना महत्वपूर्ण हो जाता है, किसानों के लिए दो बार कपास की चुनाई के लिए खेत में जाना एक आम बात है। प्रत्येक चुनाई के बीच लगभग 4 से 8 सप्ताह का समय अंतराल रखा जाता है ताकि गूलर पूर्णरूपेण परिपक्व हो जाये। परंतु कुछ अवस्थाओं के अंतर्गत कपास की दूसरी चुनाई आर्थिक रूप से उचित नहीं रहती है। इस बात को इस प्रकार समझा जा सकता है कि प्रथम चुनाई के पश्चात इतना कपास क्षेत्र में नहीं रहता या प्रथम चुनाई के पश्चात गूलर अच्छे से परिपक्व नहीं होते जिस कारण मजदूरों के रूप में लगने वाली लागत एवं चुनाई से होने वाले लाभ में सामंजस्य नहीं रहता। अतः इस समस्या के समाधान हेतु स्ट्रिपर्स का आविष्कार पर शोध किया जा रहा है। स्ट्रिपर्स एक ऐसी मशीन है जो सम्पूर्ण क्षेत्र कि चुनाई को एक ही बार में पूर्ण कर देगी, अर्थात किसान को बार बार क्षेत्र में आकर दूसरी या तीसरी चुनाई के लिए धन एवं समय व्यर्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

स्ट्रिपर्स मशीन के द्वारा सभी बीजकोष, चाहे खुले हों या बंद, एक ही बार में पौधे से हटा दिए जाएंगे। इसलिए, स्ट्रिपर के साथ कटाई में आमतौर पर तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि पौधे अपने पत्ते स्वयं नहीं छोड़ देते। कभी–कभी पत्तियों को पहले ही अलग करने के लिए रसायनों जैसे की अपपत्रकों द्वारा कृत्रिम पर्णपात किया जाता है। जिस कारण केवल कपास ही पौधे पर शेष रह जाता है जिसे स्ट्रिपर आसानी से चुन लेगा।

पादप वृद्धिनियंत्रक और पर्णपात रसायनो का उपयोग

पादप वृद्धि नियंत्रक (पीजीआर)

कपास की फसल में पीजीआर का उपयोग कपास में पौधे की वानस्पतिक वृद्धि को विनियमित करने, पौधे की ऊंचाई कम करने और बेहतर फसल सूचकांक सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। यदि फसल में नाइट्रोजन का उपयोग इष्टतम रूप में किया जाये एवं उसके साथ–साथ पीजीआर के उपयोग किया जाये तो मशीन को कपास चुनन में बहुत सुविधा होती है। बाजार में कई प्रकार के पीजीआर जैसे कि लिवोसिन, सायकोसेल आदि आसानी से उपलब्ध हैं। फूलों की अवधि के दौरान, पौधे की ऊंचाई कम करने और उच्च फल प्रतिधारण के माध्यम से उपज में सुधार करने के लिए पादप वृद्धि नियंत्रक का प्रयोग एक या कई बार किया जा सकता है। सभी श्रमिकों द्वारा साइक्लोसेल के उपचार के पश्चात पौधे के विकास में कमी देखी गई, एवं साथ ही साथ कई शोधकर्ताओं द्वारा उपज में सुधार भी अंकित किया गया था। भविष्य में शोधकर्ताओं द्वारा किसानों के लिए और अधिक शक्तिशाली एवं सक्षम पीजीआर उपलब्ध होने की संभावना सशक्त है।

पत्रपात

यांत्रिक हार्वेस्टर द्वारा कपास की कुशल चुनाई के लिए पर्णपात रसायनो का उपयोग एक अनिवार्य प्रक्रिया है क्योंकि इस प्रक्रिया के पश्चात मिलने वाला कपास कचरा मुक्त रहता है जो बाजार में आसानी से बिक जाता है। स्पिंडल टाइप पिकर के साथ कपास की यांत्रिक चुनाई कपास के पौधों के रासायनिक कृत्रिम पर्णपात के साथ की जानी चाहिए क्योंकि पत्तियां कचरा सामग्री के रूप में कपास की गुणवत्ता का अवनति कर देती है। वर्तमान समय में भारत में कोई भी पंजीकृत पर्णपात रसायन उपलब्ध नहीं है। इस समस्या के निदान के लिए कपास अनुसंधान केंद्र, नांदेड़ में 3000 पीपीएम, 4000 पीपीएम, 5000 पीपीएम और 6000 पीपीएम के साथ एथरल जो कि एक पर्णपात रसायन है के साथ किए गए अध्ययन से पता चला कि एथरल के छिड़काव के बाद पत्तियां सूख तो रही हैं परंतु उनका पर्णपात आशा के अनुरूप नहीं था।

केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान में बनी बीटी किस्म पर किए गए अध्ययन के अंतर्गत, चार पर्णपात रसायन अर्थात ड्रॉपप, ड्रॉपप + राउंडअप, एथरल और एथरल + राउंडअप का उपयोग किया गया था। शोध के निष्कर्षों से विदित हुआ कि अकेले एथरल (7000 पीपीएम) ने अधिकतम पर्णपात (79 प्रतिशत) दिखाया। अतः इससे यह ज्ञात होता है की कम से कम कचरा सामग्री के साथ मशीन से कपास चुनने से पहले पर्याप्त पर्णपात सुनिश्चित करने के लिए एक बेहतर पर्णपात रसायन की आवश्यकता है।

मशीन से चुनी गई कपास में कचरा सामग्री

भारत में कपास की मशीनी पिकिंग की सफलता के लिए आटाई कारखाने (जिनिंग फैक्ट्रियां) सबसे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यहीं पर मशीन द्वारा उठाए गए कपास का अधिकांश कचरा अलग कर दिया जाता है। भारत के हजारों जिनिंग कारखानों को कपास प्रौद्योगिकी मिशन, मिनी मिशन IV के तहत प्री–क्लीनर और पोस्ट क्लीनर के साथ आधुनिकीकरण किया गया है। अतः यह सुनिश्चित एवं अनिवार्य करना आवश्यक है कि जिनिंग कारखाने में मशीन से चुनी गई कपास के लिए पहले और बाद की कपास की सफाई के लिए अतिरिक्त विशिष्ट प्रकार के क्लीनर्स लगाने होंगे।

भारत में यांत्रिक कपास चुनाई के विकास के लिए अनुसंधान प्रयास

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिसर के केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान में प्री–क्लीनर अटैचमेंट के साथ स्ट्रिपर हार्वेस्टर का विकास किया गया है।
- कपास के खेतो के लिए मुख्यतः छोटे किसानो के लिए एक स्व–चालित सवारी प्रकार का कपास स्ट्रिपर हार्वेस्टर विकसित किया गया था। इस प्रकार के संरचित किए गए कपास हार्वेस्टर में कुछ उप–प्रणालियां शामिल हैं जो की निम्नलिखित है।

* हेडर यूनिट, जिसमें एक प्लेटफार्म, स्ट्रिपिंग कॉम्ब्स और क्रॉस ऑगर्स शामिल हैं ।
* संदेश देने वाली इकाई जिसमें चेन कन्वेयर शामिल है ।
* कपास को कार्पेल से अलग करने के लिए पृथक्करण कक्ष रखा गया है।
* चुने हुए बीज–कपास से बड़े कचरे जैसे की सूखे पत्ते एवं डंडियों आदि को अलग करने के लिए ऑन–बोर्ड प्री–क्लीनर लगाया गया है ।
* चुने हुए बीज–कपास को इकट्ठा करने के लिए भंडारण बॉक्स भी उसी में जोड़ा गया है।

इस हार्वेस्टर को विशेष रूप से संकीर्ण पंक्ति कपास की खेती के लिए बनाया गया था जैसे कि उच्च घनत्व रोपण प्रणाली में जहां वाणिज्यिक स्पिंडल टाइप हार्वेस्टर संचालित नहीं हो सकता है। अपने छोटे आकार और अपेक्षाकृत सरल संचालन के कारण यह भारतीय कपास के खेतों की चुनाई के लिए उपयुक्त है। स्पिंडल टाइप पिकर की तुलना में इसमें कम रखरखाव और प्रतिस्थापन के लिए कम हिस्से होते हैं। हालांकि इस हार्वेस्टर से चुनाई के पश्चात औसत कचरा 24 प्रतिशत था।

हार्वेस्टर में एक पूर्व–क्लीनर शामिल होने के कारण यह हार्वेस्टर प्रक्षेत्र पर ही पूर्व–सफाई का पहला चरण समाप्त कर

देता है। चुने हुए बीज–कपास की आगे की सफाई जिनिंग कारखानों में की जा सकती है। मशीन से चुने गए कपास में अत्यधिक कचरे को अलग करने के लिए एक संपूर्ण प्री क्लीनर और अधिक ब्लोअर पावर की आवश्यकता होगी। इस हार्वेस्टर की आईपीआर/पेटेंट दायर किया गया है (पेटेंट दायर आवेदन संख्या 2076/एम यूएम/2014), जो की प्रकाशित है और जांच के अधीन है।

ट्रैक्टर से जुड़ा कपास स्ट्रिपर

यह उपकरण वर्तमान समय में अभी भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिसर के केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान में अध्ययन एवं शोध के अधीन है। ऊपर दिए गए वैचारिक मिनी कपास हार्वेस्टर को भारतीय कृषि अनुसंधान परिसर–के सहयोग से अन्य सरकारी एवं निजी संस्थाओ के साथ मिलकर एक कंघी टाइप हेडर, एक बेल्ट कन्वेयर, एक ऑनबोर्ड फील्ड क्लीनर और एक स्टोरेज टैंक के साथ लगे 55 एचपी ट्रैक्टर का उपयोग करके ट्रैक्टर से जुडा कपास हार्वेस्टर बनाने के लिए विस्तारित किया गया था। इस हार्वेस्टर का मूल्यांकन 60×10 सेमी की दूरी पर लगाए गए बीटी एफ 2 हाइब्रिड पर किया गया था। मशीन में चुनाई की क्षमता 97.9 % थी और मशीन द्वारा केवल 2.1% बीजकोषों का ही चयन नहीं किया गया था। हालांकि, हेडर+क्लीनर+शैटरिंग से होने वाला नुकसान लगभग 11.5% पाया गया। मशीन की प्रक्षेत्र में क्षमता लगभग 2 घंटे/हेक्टेयर पाई गई जिसमें मशीन का उतराई और निष्क्रिय समय भी शामिल है। मशीन की कार्यक्षमता को सिद्ध करने के लिए कई प्रयोग किए गए। जब मशीन से चुनी गई कपास को ऑनबोर्ड क्लीनर के माध्यम से पुनःनवीनीकरण किया गया था, तो पहली बार चुने हुए बीज–कपास में कचरा 17% से घटकर 12% हो गया तत्पश्चात फिर से ऑनबोर्ड क्लीनर के माध्यम से इसको पुनःनवीनीकरण करने से कपास में कचरे के स्तर को 6% तक नीचे ला दिया। हालांकि कचरे की मात्रा अभी भी अधिक (23 से 29 प्रतिशत बीज–कपास आधार) पाई गई।

यदि कपास की चुनाई का कार्य सही समय पर उचित गुणवत्ता के साथ हो जाता है तो यह किसान के लिए सही अर्थों में एक वरदान साबित होगा। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है जहां मजदूरी की कमी है या मजदूरों को ज्यादा भुगतान करना पडता है तथा साथ ही भूमि क्षेत्र बहुत बडा है, वहां मशीनीकरण के लाभ सबसे अधिक रहते है। कपास कि उत्तम गुणवत्ता कि चुनाई, आधुनिक मशीन के अतिरिक्त पादप वृद्धि नियंत्रक (पीजीआर) एवं पर्णपात रसायनों पर भी निर्भर करती है। अतः सभी को किसानो के हित हेतु इस दिशा में कंधे से कंधा मिला कर काम करना होगा।

- **रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय। तोडें से फिर ना जुड़ै, जुड़ै गाँठ पड़ी जाय।।**

  – रहीम

- **थोड़ी बहुत मुहब्बत से काम नहीं चलता ऐ दोस्त, ये वो मामला है जिसमें या सब कुछ या कुछ भी नहीं।**

  – फिराक गोरखपुरी

- **कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नांहि, सीस उतारै हाथि करि, सौ पैसे मांहि।**

  – कबीर

16. कपास को गुलाबी सूँडी के नुकसान से कैसे बचाएँ ?

- **डॉ. वी. चिन्ना बाबू नाइक**, वरिष्ठ वैज्ञानिक
- **डॉ. विवेक शाह**, वैज्ञानिक
- **डॉ. टी. प्रभुलिंगा**, वैज्ञानिक

फसल सरक्षण विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पूर्वानुमान के मापदंड

ज्यादातर सामान्य मौसम में गुलाबी सूँडी अधिकतम तापमान 33° सेंटीग्रेड से अधिक, प्रातःकालीन सापेक्षिक आर्द्रता 70% से कम तथा सायंकालीन सापेक्षिक आर्द्रता 40% से अधिक, 40, 41, तथा 43 मानक सप्ताहों में तथा न्यूनतम तापमान 12° से. से कम क्रमशः 48 से 49 मानक सप्ताहों में ऐसी स्थिति रहने के फलस्वरूप गुलाबी सूँडी का नुकसान/संख्या वृद्धि गंभीर हो जाती है। लेकिन अनियमित मौसम में, पूर्व फसल को खेत में देरी तक रखने पर, तथा बेमौसम में गुलाबी सूँडियों के ग्रीष्मकालीन सुप्तावस्था में जाने के कारण, तथा अनुकूल परिस्थिति आने पर गुलाबी सूँडी के पतंगो का अपने कोषों से निर्गमन होकर इसकी सक्रियता बढ जाती है। अतः कपास के फसलकाल में गुलाबी सूँडी की हानि से बचने के लिए फैरोमोन ट्रैप के द्वारा नियमित निगरानी रखना आवश्यक है।

कपास में गुलाबी सूँडी का प्रबंधन

1. फैरोमोन ट्रैप द्वारा आर्थिक हानि स्तर (गुलाबी सूँडी के 8 पतंग प्रति ट्रैप प्रति रात्री सतत 3 रातों तक पकड़ में आने पर) आधारित निगरानी ।
2. गुलाबी सूँडी की संख्या नियंत्रण में रखने के लिए अधिकांश नर पतंगों को बडी संख्या में फैरोमोन ट्रैप (20 ट्रैप/हे) फसल पारितंत्र में स्थापित करने की एक विधि है। इसमें नर-मादा पतंगों का मैथुन विच्छेद होकर संख्या वृद्धि नियंत्रित हो जाती है।
3. कपास की ग्रीष्मकालीन फसल न लेना।
4. कपास की अंतिम चुनाई के तुरंत बाद बीटी कपास के खेतों की गहरी जुताई करके इस सूँडी के बचे हुए कोषों को नष्ट करना।
5. अंतिम चुनाई के बाद, कलियों व छोटे हरे गूलरों को नष्ट करने के लिए भेड़-बकरियों व अन्य पशुओं को कपास के खेत में चरने के लिए छोडना जिससे इस नाशीकीट के आगामी फसलसत्र में जाने से रोका जा सके।
6. इस नाशीकीट के आगामी फसलसत्र में जाने से रोकने के लिए कपास के सूखे डंठलों को नष्ट करना।
7. आवश्यक होने पर ही रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करना (आर्थिक हानि स्तरः 10% या इससे अधिक जीवित सूँडियों सहित ग्रसित फूलों व हरे गूलरों का पाया जाना)।
8. ब्रेकॉन लेफ्रायी बहुप्रयोजन ब्रेकोनिड अंतःपरजीवी है। यह नवम्बर से दिसंबर के मध्य प्राकृतिक रूप से गुलाबी सूँडी की संख्या को नियंत्रित करता है। यह मित्र कीट सन 1976 में एरियास इंसुलाना पर भी ईरान में दर्ज किया गया है। कपास में एक लंबे अंतराल के बाद गुलाबी सूँडी का प्राकृतिक परजीवीकरण रिपोर्ट किया गया है। गुलाबी सूँडी की शीर्ष अवस्था में यदि यह परजीवी नहीं पाया जाता है तभी कीटनाशकों का छिडकाव किया जाए।
9. सायपरमेथ्रिन (10ईसी) अथवा डेल्टामेथ्रिन (2.8ईसी) अथवा फेनवलरेट (20ईसी) अथवा लेम्बडा-सायहेलोथ्रिन (5ईसी) में से किसी भी कीटनाशक का 01 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिडकाव करें।
10. यहां तक कि ओटाई कारखानों से भी सूँडी से प्रभावित रंगीन दाग वाली कपास को एकत्र कर जला दें।

अपने ही घर में दासी जैसी सिमटी बैठी हिंदी रानी।
और रानी बन बैठी यह सयानी इंग्लिश बानी।।

हिंदी एक जीवन्त भाषा है। इसमें बड़ी सुनम्यता और उदारता है। हिंदी के यही गुण हैं जो इसे दूसरी भाषाओं के शब्दों और रूपों को आत्मसात करने की असीम क्षमता प्रदान करते हैं।

– के आर नारायणन

भाषा और संस्कृति से खिलवाड करने वाले राजनीतिज्ञ आते हैं और चले जाते हैं। भारतीय संस्कृति की प्रतीक हिंदी सदा अमर रहेगी।

– डा हजारी प्रसाद द्विवेदी

साहित्यकार का लक्ष्य

➤ साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का साधन जुटाना नहीं है– उसका दर्जा इतना न गिराइये। वह देश–भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई सच्चाई है।

– प्रेमचंद

➤ रोटी को निकले हो ? तो कुछ और चलो तुम।
प्रेम चाहते हो ? तो मंजिल बहुत दूर है।
क्षितिजो के पार क्षितिज पर चलते जाओ

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

➤ ईश्वर का भय ही ज्ञान का उदय है।

– बाईबल

■ भाषा विचार का परिधान है।

– डॉ. जॉनसन

■ मातृभाषा का अनादर, माँ के अनादर के बराबर है।

– महात्मा गाँधी

■ मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा जब हिंदी विश्व की सांस्कृतिक भाषा होगी।

– सुमित्रानंदन पंत

17.

बीटी कपास के विरूद्ध गुलाबी सूँडी में प्रतिरोधकता एवं विपरीत प्रतिरोधकता

डॉ. चन्द्रशेखर एन., वैज्ञानिक, फसल सुधार विभाग
डॉ. पूजा वर्मा, वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग
डॉ. सविता संतोष, वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

परजीनी कपास (बीटी–कपास) का विकास मृदा में पाए जाने वाले जीवाणु बेसीलस थूरिंजिएंसिस से क्राई अतःविष के लिए संकेतबद्ध किए गए वशाणु (जीन) का निवेशन करके किया गया। इसके पीछे यह विचार था कि क्राई अतःविष का अभिव्यक्त करने वाले कपास के पौधों को लेपिडोप्टेरा वर्ग के कीट (इल्लियां) खाकर पक्षाघात (लकवा) से ग्रसित होकर मर जाएंगे। भारत में, वर्ष 2002 के दौरान, मोंसेटो के सहयोग से महाराष्ट्र संकर बीज कंपनी (माहिको) द्वारा आनुवांशिक अभियांत्रिकी अनुमोदन समिति (जीइएसी) से स्वीकृति लेकर व्यावसायिक खेती के लिए परजीनी संकरों को जारी किया जिनमें क्राई–1एसी (ईवन्ट मोन 531) था। यद्यपि पहली पीढी बीटी कपास बीजी–I (बॉलगार्ड–I) सफल रहा, फिर भी जैसा कि मोंसेंटो कंपनी द्वारा रिपोर्ट किया गया कि बीटी कपास के प्रति वर्ष 2009 से ही गुलाबी सूंडी में प्रतिरोधकता का विकास आरंभ हो गया था। इसके बाद दूसरी पीढी की बीटी कपास बीजी – II (बॉलगार्ड–II) का विकास किया गया जिसमें बॉलगार्ड–I के क्राई–1एसी के अतिरिक्त क्राई–2एबी वशाणु का भी समावेश था जिसमें दो भिन्न–भिन्न बीटी प्रोटीन स्थायी प्रतिरोधकता के लिए होते थे। वर्तमान में भारत में, बीजी–I आधारित बीटी कपास के संकरों की खेती अधिकाश कपास क्षत्रफल में की जा रही है। दुर्भाग्य से सन 2015 में दूसरी पीढी की बीटी कपास भी भाकृअनुप– केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा गुलाबी सूँडी के प्रति संवेदनशील रिपोर्ट की गई है। कपास उत्पादक किसानों के हित के लिए यह एक गभीर समस्या है जिस पर संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

कीट प्रतिरोधकता एक प्रक्रिया है जहां कीट में ऐसा आनुवांशिक परिवर्तन होता है जो बीटी विष युक्त कपास को खाते पर उसे जीवित रखने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, प्रारंभ में कीट बीटी विष के प्रति संवेदनशील होते हैं और जब वे बीटी कपास को खाते हैं तो मर जाते हैं। यद्यपि, कैढेरिन रिसेप्टर्स में उत्परिवर्तन जैसे आनुवांशिक परिवर्तनों के कारण, ये कीट बीटी के लिए प्रतिरोधकता विकसित कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार की प्रक्रिया एक दुर्लभ घटना है, और आगामी पीढियों में इसके जनन को कम करने के लिए, प्रजनन काल में आस–पास निषेचन के लिए संवेदनशील कीट सहभागी का होना आवश्यक है। क्राई वशाणुओं के प्रति प्रतिरोधकता का परपोषी वशाणु द्वारा नियमन होता है और यह प्रतिरोधकता अप्रभावी है। इसका अर्थ यह है कि प्रतिरोधिता को अभिव्यक्त करने के लिए वशाणु के अप्रभावी एलील समयुग्मजी स्थिति में होना आवश्यक है। इस संबध में कीट जनसंख्या को SS (संवेदनशील), RS (संवेदनशील) तथा RR (प्रतिरोधी) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। SS तथा RS विभेद (उपभेद) वाले कीट, बीटी फसल को खाकर तुरत लकवाग्रस्त हो सकते हैं लेकिन RR विभेद वाले नहीं, क्योंकि पौध में बीटी अभिव्यक्ति के लिए बीटी विष की पर्याप्त मात्रा नहीं है। कीटों में प्रतिरोधकता निर्माण के जोखिम को कम करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रबधन नीतियां हैं; उदाहरण के लिए, रिफ्यूजिया रणनीति, वशाणु (जीन) पिरामिडीकरण तथा परिवर्तित बीटी विष। किसानों द्वारा अपनाने में आसान तथा शीघ्र अनुकरणीय होने के कारण रिफ्यूजिया रणनीति पर जोर दिया जाना चाहिए। अतः, बीटी कपास उत्पादक किसानों द्वारा बीज की थैली के साथ उपलब्ध कराए गए रिफ्यूजिया बीजों (बीटी बीजों के साथ सीमित मात्रा में प्रदान किए गए बीटी रहित बीज) की भी बुआई अवश्य करनी चाहिए । इसके पीछे सिद्धान्त यह है कि खेत में रिफ्यूजिया (बीटी रहित) पौधों पर जीवित रहने वाले कीट संवेदनशील कीट संख्या के रूप में ही रहते हैं। विकासशील प्रतिरोधी कीटों के साथ निषेचन के लिए ये संवेदनशील कीट

उपलब्ध रहेंगे, जिससे प्रतिरोधी कीट संख्याओं के आगे का प्रजनन रुक जाता है। दुर्भाग्यवश, भारत में अधिकांश किसान रिफ्यूजिया की अवधारणा को नहीं अपना रहे हैं, यह सोचकर कि इससे उपज कम मिलेगी। गुलाबी सूंडी के प्रतिरोधी विभेद के विकास का यह मुख्य कारण रहा है।

अभी हाल ही में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की कार्यवाही में प्रकाशित 11 वर्षों के अनुसंधान कार्य के आधार पर बीटी तथा बीटी रहित कपास के पौधों के संकरण से संकर बनाए। जिनसे दूसरी पीढ़ी (एफ–2) बीजों की बुआई करने पर स्वतः 25% क्षेत्रफल में रिफ्यूजिया अर्थात् बीटीरहित पौधे तथा 75% बीटी पौधे खेतों में मिले। यह सिद्धांत विकासशील देशों के लिए बहुत उपयुक्त है क्योंकि इससे अलग से रिफ्यूजिया की बुआई करने की आवश्यकता नहीं होती। यह जाना–पहचाना तथ्य है कि रिफ्यूजिया लगाने के नियम का पालन करना बीटी कपास के विरुद्ध गुलाबी सूंडी में प्रतिरोधिता के देरी से विकास के लिए उत्तरदायी है। यान्ग्जे नदी घाटी में चीन के लाखों किसानों द्वारा दूसरी पीढ़ी के संकर कपास के बीजों की बुआई सिर्फ खेती की लागत कम करने तथा उपज व उत्पादकता बढ़ाने के लिए, न कि प्रबंधन रणनीति के अंतर्गत, प्रारम्भ कर दी है। यद्यपि, इस रणनीति के पीछे मुख्य उद्देश्य, पैतृक किस्मों के साथ तुलना में, कीटनाशकों की कम लागत के साथ उत्कृष्ट पाया जाना था। कीट प्रबंधन की इस रणनीति से कपास के खेत में संवेदनशील गुलाबी सूंडी की मौजूदगी सुनिश्चित होगी, जो प्रतिरोधी कीट की जनसंख्या को कम रखने में मदद करेगी। यह युक्ति न केवल कीट प्रतिरोधिता के विकास को विलंबित करने के लिए एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कीट प्रबंधन रणनीति प्रदान करेगी बल्कि किसानों के खेत में रिफ्यूजिया के समावेश को भी सुनिश्चित करेगी।

- एक राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय चरित्र का विकास भाषा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होता है।

  - अज्ञेय

- धैर्य दर्द से भरा है, किन्तु उसका फल मधुर होता है।

  - रामकृष्ण परमहंस

- कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला-जुला कर रख सके। इसलिए हिंदी को बढ़ावा देना सबका काम है।

  - इंदिरा गाँधी

- हिंदी सीखे बिना भारतीयों के दिल तक नहीं पहुँचा जा सकता।

  - डॉ. लोथर लुत्से

18. कृषि के नाशीकीटों के प्रबंधन के लिए प्रतिकर्षण-आकर्षण कार्यनीति

डॉ. विवेक शाह, वैज्ञानिक

डॉ. वी. चिन्ना बाबू नाइक, वरिष्ठ वैज्ञानिक

फसल सरक्षण विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

समेकित नाशीकीट प्रबंधन कार्यक्रमो मे प्रयोग के लिए प्रतिकर्षण–आकर्षण (पुश व पुल) कार्यनीति एक पारिस्थितिकी आधारित अनोखा नाशीकीट प्रबंधन का साधन है। नाशीकीटो की व्याप्ति एवं आधिक्य को बदलने के लिए व्यवहार परिवर्तित करने वाले उद्दीपनों के प्रयोग द्वारा नाशीकीटो के व्यवहार को परिवर्तित करने पर यह तकनीक निर्भर करती है। इस तकनीक में दो घटक है, इनमे से एक है 'प्रतिकर्षक' अथवा प्राथमिकता वाली मुख्य फसल जो एक 'प्रतिकर्षण' घटक (पुश) के रूप में कार्य करती है। दूसरा घटक है – प्रलोभक फसल जो 'आकर्षक' (पुल) घटक के रूप में कार्य करता है। एक ही साथ मे इन घटकों का संयोजन नाशीकीट व्यवहार को परिवर्तित करता है जो नाशीकीट एवं/अथवा मित्र कीटों की व्याप्ति एवं आधिक्य मे बदलाव का कारण बनता है। अति स्पष्ट एवं आकर्षक उद्दीपकों के द्वारा नाशीकीट प्रलोभक–फसल के प्रति आकर्षित होते हैं जहाँ वे संकेन्द्रित होते हैं और अपना नियंत्रण को आसान बनाते हैं।

प्रतिकर्षण–आकर्षण (पुश–पुल) की अवधारणा तथा यह शब्द सर्वप्रथम आस्ट्रेलिया मे सन 1987 में पायके, राइस, सबीन तथा जलुकी द्वारा प्रयोग किया गया। प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति की अवधारणा का प्रयोग इन शोध कार्यकर्ताओं द्वारा कपास मे हेलीकोवर्पा की व्याप्ति एवं आधिक्य के नियत्रण के लिए किया गया। इस तकनीक से कीटनाशकों के उपयोग में कमी आई और इसके साथ ही कपास में हेलिकोवर्पा संख्या में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता के विकास मे भी कमी आई। इसके बाद इस संकल्पना का अमेरिका के अनुसधानकर्ताओं मिलर तथा काउलेस द्वारा 1990 में पुनर्सूत्रण एवं परिभाषित किया गया। इस कार्यकर्ता समूह द्वारा इस तकनीक को नाम 'स्टीमुलो डिटरन्ट डाइवर्जन तकनीक' नाम दिया गया। इन्होंने इसका विस्तार प्याज की मक्खी, डेलिया एन्टीक के प्रबंधन के लिए किया।

सुनिश्चित, महत्वपूर्ण एवं पारिस्थितिकी रूप से लाभप्रद प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति को लागू करने व विस्तार के लिए प्रबधन किए जाने वाले नाशीकीट की सपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी की आवश्यकता होती है। इसे समझने के लिए नाशीकीट की जैविकी, इसके परपाषी के साथ व्यवहार संबंधी तथा रासायनिक पारस्परिक क्रियाओं तथा नैसर्गिक शत्रुओं पर विस्तृत जानकारी की आवश्यकता होती है। विचाराधीन नाशीकीट समस्या की विशिष्टता, संवेदी क्षमता एवं गतिशीलता के आधार पर प्रत्येक कार्यनीति के लिए विभिन्न घटकों के समुचित तथा इष्टतम संयोजन भिन्न–भिन्न होते है। इसके साथ ही लक्षित सुरक्षा के लिए ससाधन भी भिन्न–भिन्न होते हैं। अनेक देशों मे नाशकीटों की समस्या के प्रबंधन के लिए प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति को लागू किया गया है, इनमें सबसे सफल उदाहरण अफ्रीका में मक्का अथवा ज्वार जैसी खाद्यान्न फसलों में तना छेदक प्रबंधन का है। यह कार्यनीति गरीब किसानों के लिए सर्वाधिक सफल रही है तथा इसके क्षेत्र में अंगीकरण की दर भी बेहतर रही है। इस प्रौद्योगिकी का खाद्यान्न उत्पादन बढाने में सार्थक अधिप्रभाव पडा, जिसका दश की खाद्यान्न सुरक्षा में योगदान रहा। फसल के चारों ओर घासों के रोपण ने नाशीकीटो को आकर्षित तथा धारण करके रखा जबकि मक्का की कतारों के मध्य शालिपर्णी (डेस्मोडियम) जैसे दूसरे पौधों के रोपण से नाशीकीट दूर रहे तथा परजीवी पौधे स्ट्रिगा का भी नियंत्रण हुआ।

पूर्वी अफ्रीका की प्रमुख मिश्रित फसल–पशुधन कृषि प्रणाली में मक्का और ज्वार लाखो गरीब किसानो के लिए प्रमुख खाद्यान्न एवं नगदी फसल है। मक्का उत्पादन बढाने में तना छेदक समूह प्रमुख बाधक कारक है। तना छेदक की 4 जातियां (काइलो पारटेलस, एल्डाना सेक्कारिना, बूसिओला फस्का तथा सेसेमिया

केलामिस्टिस) उस क्षेत्र में मक्का तथा ज्वार की फसल को ग्रसित करती है जो पैदवार क्षमता की 30–40% उपज में हानि का कारण बनती हैं। व्यवहार परिवर्तन करने वाले उद्दीपनों का प्रयोग, तना छेदक नाशीकीटों के प्रबंधन के लिए तना छेदक समूह तथा लाभदायक कीटों के विस्तारण तथा बहुलता में परिवर्तन के लिए प्रतिकर्षण – आकर्षण तकनीक में समावेश है। यह रासायनिक पारिस्थितिकी, कृषि जैवविविधता, पौधों में परस्पर तथा कीट–पौधे में पारस्परिक क्रिया की गहरी जानकारी पर आधारित है। इस तकनीक के अंतर्गत मोलासिस–ग्रास (मेलिनिस मइन्यूटीफ्लोरा) तथा शालीपर्णी (डेसमोडियम असीनटम तथा डेसमोडियम इंटोरटम प्रतिकर्षण/पुश) जैसी प्रतिकर्षक अंतःफसलों को खाद्यान्न फसल के साथ लेने तथा नेपियर घास (पेनीसेटम परपूरियम) तथा सूडान घास (सोरघम वलगेरी सूडानेन्स) (आकर्षक/पुल) के साथ आकर्षक प्रलोभक पौधों के साथ इस अंतःफसल के चारों ओर एक सीमांत फसल लगाई गई।

नाशीकीट प्रबंधन में प्रतिकर्षण – आकर्षण कार्यनीति को अपनाने के लाभ

1. प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति का प्राथमिक उद्देश्य नियंत्रक उपायों की प्रभावकारिता में अधिकतम बढोत्तरी निगमों/पैदावार की दीर्घकालिकता को बनाए रखने में निहित है जबकि नकारात्मक पर्यावरणीय अभिप्रभाव को न्यूनतम करना है।
2. प्रतिकर्षण–आकर्षण कार्यनीति के घटक सामान्यतः विष रहित हैं। इसलिए इन्हें आसानी से जैवनियंत्रण के साथ समेकित किया जा सकता है।
3. प्रतिकर्षण–आकर्षण तकनीकी द्वारा सीमांत व लघु किसानों तथा–ग्रामीण परिवारों की आजीविका में सुधार हुआ है तथा उत्पादन लागत में कमी के साथ कृषि उत्पादकता में वृद्धि भी हुई है।
4. इसके साथ प्रयुक्त फसलों के संयोजन से मृदा–उर्वरता में सुधार हुआ है तथा मृदा क्षरण में भी कमी आयी है, उदाहरण के लिए, आफ्रिका में तना छेदक का प्रबंधन पशुधन का नैपियर घास का चारे के रूप में प्रयोग के साथ इससे मृदा संरक्षण भी होता है। इसके अतिरिक्त यह तना छेदक प्रबंधन में एक प्रलोभक पौधा के रूप में कार्य करता है। शालिपर्णी (डेसमोडियम) जो एक नत्र स्थरीकरण करने वाली दलहन है, इसको मृदा उर्वरता बढाने तथा गुणतायुक्त चारे के लिए उगाया जाता है। यह एक प्रभावी तना छेदक प्रतिकर्षक तथा स्ट्रिगा खरपतवार नियंत्रक भी है। मक्का अथवा ज्वार के साथ शालिपर्णी को अंतःफसल के रूप में लगाने से तथा छोटे किसानों की पहुँच से बाहर हो रहे महँगे नत्रयुक्त उर्वरकों को बाह्य आदान के रूप में इनकी आवश्यकता को कम किया जा सकता है। शालिपर्णी के प्रयोग से दूसरे आदानों की दक्षता में भी सुधार होता है।
5. उसी भूमि क्षेत्रफल में विभिन्न फसलों के संयोजन के प्रयोग से कृषि पारितंत्र में जैवविविधता में संवर्धन होता है।
6. चारा फसलों की उन्नत पैदावार द्वारा पशुधन उत्पादन में बढोत्तरी होती है।
7. यह सीमांत तथा लघु किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभप्रद कार्यनीति है।

- दिल टूटना एक अच्छा संकेत है। इससे यह तो पता चलता है कि हमने किसी चीज के लिए कोशिश तो की......।

–एलिजाबेथ गिल्बर्ट

- सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजूए–कातिल में है।
  रहरव–ए–राहे मोहब्बत थक न जाना राह में, लज्जतें–सहारा नवर्दी दूरिये–मंजिल में है......।

–बिसमिल अजीमाबादी

- हम सभी भारतवासियों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि हम हिंदी को अपनी भाषा के रूप में अपनाएँ।

डॉ. भीमराव आम्बेडकर

- हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर यह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।
- दर्शन का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना नहीं, उसे बदलना है....।

डॉ. राधाकृष्णन

19. बैन-एफिड-एक नवाचारी हैकर

डॉ. टी. प्रभुलिंग, वैज्ञानिक, फसल संरक्षण विभाग
डॉ. एच.बी. संतोष, वैज्ञानिक, फसल सुधार विभाग
डॉ. रचना पांडे, वरिष्ठ वैज्ञानिक, फसल संरक्षण विभाग
डॉ. मधु टी. एन., वैज्ञानिक, फसल संरक्षण विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

एफीडॉयडिया सुपरफॅमिली के छोट आकार के कीट–चेंपा (एफिड) कई कृषि तथा उद्यानिकी फसलों के महत्वपूर्ण बहुरूपी नाशीकीट हैं जिनसे फसलों को वार्षिक नुकसान करोडों डालर का होता है। ये रसचूसक कीट हैं जो अपने लिए आवश्यक अमीनो एसिड पादप पोषवाही उतक (फ्लोएम) के द्वारा ग्रहण करते हैं। चूँकि पादप रस में अमीनो एसिड कम मात्रा में होते हैं लेकिन शर्करा की मात्रा अधिक होती है। एमीनो एसिड की जरूरता को पूरा करने के लिए एफिड अधिक पादप रस का शोषण करता है और अतिरिक्त शर्करा को अपने शरीर से मधुरस (मधु–बिंदु) के रूप में उत्सर्जित करते हैं। व्यतिक्रम उत्परिवर्तन की उच्च संभावना के कारण तथा उच्चअड उत्पादकता के कारण कीटनाशक प्रतिरोधिता की समस्या एफिड में बहुधा उत्पन्न होती है। अतः रासायनिक नियंत्रण विधियाँ पर्यावरण हितैषी नहीं हैं। यद्यपि, एक पर्यावरण संपोषित नाशीकीट प्रबधन कार्यनीति के विकास के बदले में आयजैम क्यू ल्यूवैन दल द्वारा एक नवाचारी विधि, एफिड की संचार– प्रणालियो का उपयोग करके विकसित की है। इस दल द्वारा *ई. कोलाई* कोशिकाओं को एफिड के अपने सचेतक फीरोमोन, E–β–फरनेसेन (EβF) का उपयोग पादप से प्रतिकर्षित करने का कीटनाशकों के प्रभाव का अनुकरण करने के लिए किया गया। अनुसंधानकर्ताओं के इस दल द्वारा इस आनुवांशिक रूप से परिवर्तित *ई. कोलाई* कोशिकाओं को बैन–एफिड(अर्थ–एफिड को प्रतिबधित करना) नाम दिया गया। इ-बीटा-एफ एक सार्वत्रिक एफिड सचेतक फीरोमोन है जिसका स्त्राव एफिड की तनुश्रगियां (कार्निकल) से खतरनाक स्थितियों में सचेत करने के लिए, (जैसे कि, नैसर्गिक शत्रु का प्रवेश) होता है। एफिड में वंशाणु–अभिव्यक्ति में बदलाव होता है जो उन्हे गतिशीलता के लिए प्रेरित करता है और एफिड पादप को छोड़ देता है। इ-बीटा-एफ ऑक्सीकरण के लिए अति–संवेदनशील है इसलिए जीवाणु कोशिकाओं को "बैन एफिड्स" कहा जाता है जो नियमित रूप से इ-बीटा-एफ उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त, मिथाइल सैलीसाइलेट (एमइएस), एफ पादप–हार्मोन है जो पौधों द्वारा उस समय स्रवित किया जाता है जब उन पर कीटों का आक्रमण होता, उदाहरणार्थ, एफिड ग्रसन के बाद यह पादप सुरक्षा प्रणाली को सक्रिय करने के साथ ही एफिड के परभक्षियों को आकर्षित करता है, उदाहरणार्थ, सोनपंखी(लेडीबर्ड बीटल) तथा हरे रंग का लेसविंग।

वैज्ञानिकों ने मुख्यतः मिथाइल सैलीसाइलेट (एमइएस) के उत्पादन में वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित किया है जो की इसके पूर्वगामी, करिस्मेट के उत्पादन द्वारा सम्भव है। एमइएस और इ-बीटा-एफ के उत्पादन के लिए प्रारंभिक प्रणाली जीवाणुओं और एफिड के मध्य सीधे अंतर्क्रिया पर निर्भर करती है जिसके लिये बैन–एफिड का पौधे पर छिडकाव किया जाएगा। अतः एक वैकल्पिक कार्यनीति के अंतर्गत बैन–एफिड को रखा जा सकता है। ये, फीरोमोन का हवा में प्रकीर्णन होने देते हैं। इसके साथ ही, मधुबिंदुओं का स्राव करते हुए एफिड की मौजूदगी को दोनों फीरोमोन के उत्पादन के लिए प्रेरक के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये, चूँकि इ-बीटा-एफ का रचनात्मक उत्पादन एफिड्स को तेजी से असंवेदनशील बना देता है, इसकी सांद्रता अभ्यस्त होने से रोकने के लिए इसे बदलते रहना चाहिए ताकि संवेदनशीलता बनी रहे।

साराश में, बेन-एफिड्स एमइएस (एक पादप हार्मोन तथा इ-बीटा-एफ (एक फीरोमोन) उत्पन्न करते हैं। एमइएस पादप प्रतिरक्षाप्रणाली को सक्रिय करेगा तथा यह नैसर्गिक परभक्षियो एव परजीवीयों को आकर्षित करता है। इससे अतिरिक्त, इ-बीटा-एफ पौधा से एफिड का प्रतिकर्षित करेगा तथा एक गौण प्रभाव के

रूप में, यह एफिड के नैसर्गिक परभक्षियों व परजीव्याभों /परजीवीयों को आकर्षित करेगा। एमइएस तथा इ-बीटा-एफ पौधों, परभक्षियों तथा एफिड्स के मध्य संचार में नैसर्गिक रूप से प्रयोग किए गये। इसके साथ ही बेन-एफिडस पारितंत्र में मिश्रित होगा तथा पौधों, परभक्षियों एवं एफिडस के मध्य संचार में बढ़ोतरी करेगा। पादपों तथा कीटों दोनों के साथ बहुत से प्रयोग संचालित किए गए जिनमें पर्यावरण–हितैषी ढंग से एफिडस का प्रभावी नियंत्रण प्रदर्शित हुआ।

- आशा उत्साह की जननी है। आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है।

  – प्रेमचंद

- हिंदी जब तक शिक्षा का माध्यम नहीं बनती, उसमें मौलिक वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि संभव नहीं।

  – निहालकरण सेठी

- हिंदी के बिना भारत की राष्ट्रीयता की बात करना व्यर्थ है।

  – डॉ. वी.वी.गिरी

- हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

  – महर्षि दयानन्द सरस्वती

- हिंदी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है, यह सब की सहोदरी है

  – महादेवी वर्मा

- भारत की एकता चाहने वालों को हिंदी अपनानी ही पड़ेगी।

  – जे वेंकट रामन

- राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिए सारे देश में हिंदी और नागरी का प्रचार आवश्यक है।

  – लाला लाजपतराय

- राष्ट्र को राष्ट्रध्वज की तरह राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, और ये स्थान हिंदी को प्राप्त है।

  – अनन्त गोपाल शेवड़े

20.

मकड़ी विष : नाशीकीट प्रबंधन के लिए एक अद्‌भुत जीवविष

- **डॉ. टी. प्रभुलिंग**, वैज्ञानिक
- **डॉ. शाह विवेक**, वैज्ञानिक
- **डॉ. नीलकंठ एस. हिरेमनी**, वैज्ञानिक
- **डॉ. बाबासाहेब बी.फंड**, वैज्ञानिक

फसल सरक्षण विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

मकड़ियां संघ (फाइलम) – संधिपाद (आथ्रोपोडा) की वर्ग (क्लास) अरेकनिडा के अंतर्गत आती हैं। इनका शरीर दो हिस्सों में बँटा होता है – शिरोवक्ष (सिफेलोथोरेक्स) व उदर। सिफेलोथोरेक्स में चार जोड़ी टांगों के अतिरिक्त एक जोडी भेदक/विष दंत (फेंग्स) अथवा चेलीसरी जो कि अपने शिकार में विष को इंजेक्ट करने के लिए होते हैं। लगभग सभी मकड़ियाँ जाल बुनने में समर्थ होती हैं। इनका जाल अपनी मजबूती के लिए जाना जाता है। इस संबंध में इथियोपिया की एक कहावत प्रसिद्ध है, "जब मकडी संगठित होती हैं तो एक शेर को भी अपने जाल में बाँध सकती हैं।" जाल का काम मकड़ियों के आवरण युक्त अंडों की सुरक्षा करने के अतिरिक्त अपने शिकार को फंसाने के लिए भी होता है। मकडियों का स्वभाव परभक्षी का होता है जो अपने विष के द्वारा शिकार को निगलती/खाती है। कुछ को छोडकर सभी मकड़िया अपने शिकार को मारने अथवा अपने वश में करने के लिए अपने विष पर निर्भर रहती हैं। मकडी वर्गिकी विज्ञानी द्वारा सन 2015 तक 114 कुलों से मकडियों की लगभग 45,700 जातियो को दर्ज किया गया हैं। इनमें से सिर्फ 174 जातियों के विष घटक का लक्षण वर्णन किया गया है और शेष जातियो की एक बड़ी सख्या के विष अभिलक्षणन का विस्तृत अध्ययन होना शेष है।

यहां जीवविष (वेनम) तथा जहर (पॉयजन) में अंतर को जानना प्रासगिक होगा। 'जहर' स्पर्श करने अथवा खाने के द्वारा आमाशय में पहुँचने के पश्चात त्वचा द्वारा अवशोषित हो जाते हैं जबकि 'जीव विष' एक प्राणी से दूसरे प्राणी (जीव) में काटने, डंक मारने अथवा घोंपन/प्रहार के द्वारा सीधे इंजेक्ट किये जाते हैं। सरल शब्दों में कह सकते हैं, "यदि आप इसे काटते हैं और आप मर जाते हैं तो यह जहर है; यह जहरीला है। यदि यह आपको काटता है और आप मर जाते हैं तो यह जैवविषैला है।" जैवविष के घटक असाधारण रूप से जटिल हैं तथा समुद्री घोंघे, बिच्छू तथा साँपों के विषों की तुलना में इनका अध्ययन कम किया गया है। इसमें कई प्रकार के लवण, छोटे जैविक यौगिक, बडे पूर्वतंत्रिका युग्मन स्नायुविष पेप्टाइड्स, आदि होते हैं। डाइसल्फाइड से भरपूर पेप्टाइड स्नायुविष मकडी के विष में मुख्य घटक होते हैं। बहुत कम विष को छोडकर सभी अभिलक्षण वर्णित विष उच्च चयनित होते हैं जो मनुष्य तथा कुछ कीट–प्राकृतिक शत्रुओं के लिए बहुत सुरक्षित पाए गए हैं। ऐसा इनकी चयनात्मकता के कारण है। अतः ये कीटनाशक के रूप में उपयोग के लिए योग्य हैं।

वर्तमान में, जिसके लिए ज्यादा मांग है, वह है जैविक (आर्गेनिक)। इस प्रकार, मकडी विष को एक जैवकीटनाशक के रूप में इसके अविश्वसनीय कीटनाशक गुणों के कारण उपयोग करना अत्यावश्यक है। क्वींसलेंड विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया की एक रिपोर्ट के अनुसार मकडी विष पेप्टाइड *हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा* तथा *स्पोडोप्टेरा लिट्टोरेलिस* की इल्ली/सूँडी की दूसरी प्रावस्था के रासायनिक नियंत्रण के लिए प्रभावी पाया गया है।

मकडी विष को फसलों पर छिडकाव के रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त कीट-प्रलोभक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके भी आगे कीटनाशक मकड़ी विष पेप्टाइड्स (आइ.एस. वी.पी) पारवंशाणुओं (परजीन) को पादप जीनोम में भी बीटी वशाणु की तरह कपास के पौधे में कीटों के विरूद्ध प्रतिरोधिता के लिए समाविष्ट किया जा सकता है। मकड़ी–विष वशाणु का प्रयोग करके परजीनी कपास के विकास का प्रयास राष्ट्रीय जैवप्रौद्योगिकी एवं आनुवांशिक अभियात्रिकी संस्थान (एन.बी.जी.इ.), पाकिस्तान में किया जा रहा है। आनुवांशिक–परिवर्तित (जीएम) फसल में प्रतिरोधिता विकास पर रिव्यूजी/विशेषक

लक्षण के समूहन के जीन पिरामिडीकरण के द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। चूंकि आइ.एस.पी.पी. परजीना की सक्रिया की प्रक्रिया बीटी जीनों से पूर्णतः भिन्न है, ये पिरामिडीकरण अथवा विशेषक लक्षण समूहन के लिए एक अच्छे प्रतिनिधि हो सकते हैं।

- "दुल्हन का श्रृंगार, अधूरा है बिना बिंदी के,
  राष्ट्र का उद्धार, अधूरा है बिना हिंदी के।"
  भाषा के संसार की सरताज है हिंदी,
  अभिव्यक्ति का सुमधुर साज है हिंदी।
  निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,
  बिन निज भाषा ज्ञान तें, मिटत न हिय को सूल।

– भारतेंदु हरिश्चंद्र

- हिंदी जानदार भाषा है, वह जितनी बढ़ेगी, उतना अधिक लाभ होगा।

– पं. जवाहरलाल नेहरू

- जो मनुष्य लोगों के व्यवहार से ऊब कर क्षण प्रतिक्षण अपने विचार बदलते रहते हैं, वे दुर्बल हैं, उनमें आत्मबल नहीं है।

– सुभाषचन्द्र बोस

- भारत की अखण्डता को बनाए रखने के लिए हिंदी का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है।

– महाकवि शंकर कुरूप

- विद्वता अच्छे दिनों में आभूषण, विपत्ति में सहायक और बुढ़ापे में संचित धन है।

– हितोपदेश

21. सूक्ष्म जीवों के उपयोग से पा सकते हैं कीटों एवं रोगों से छुटकारा

श्री रामचंद्र सलामे, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
सुश्री पायल वाघाये, कुशल कार्मिक
श्री सुशील मावळे, कुशल कार्मिक
फसल सुधार विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

ज्यादा उत्पादन की चाह में अत्याधिक, रासायनिक, कीटनाशकों के प्रयोग से इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। किसान अब यह अनुभव करने लगा है कि रासायनिक कीटनाशक अब उन्ही शत्रु कीटों पर बेअसर हो रहे हैं, जिन पर वो रसायन प्रयोग कर पहले छुटकारा पाते थे। ऐसे में बहुत से सूक्ष्मजीव विषाणु, जीवाणु, फफूंद हैं जो शत्रु कीटों में रोग उत्पन्न कर उन्हें नष्ट कर देते हैं। इन्ही सूक्ष्मजीवों को वैज्ञानिकों ने पहचान कर प्रयोगशाला में इनका बहुगुणन किया तथा प्रयोग हेतु उपलब्ध करा रहे हैं। जिनका प्रयोग कर किसान लाभ ले सकते हैं।

सूक्ष्म जैविक कीटनाशक निम्न प्रकार के हैं।

अ) जीवाणु (बैक्टीरिया) : जीवाणु प्रकृति में स्वतंत्र रूप से भी पाए जाते हैं, परंतु इनके उपयोग को सरल बनाने के लिए इन्हें प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से तैयार करके बाजार में पहुंचाया जाता है जिससे कि इनके उपयोग से फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों से बचाया जा सकता है।

1) **बेसिलस थ्यूरिन्जेनेंसिस :** यह एक बैक्टीरिया आधारित जैविक कीटनाशक है। इसके प्रोटीन निर्मित क्रिस्टल में कीटनाशक गुण पाए जाते हैं जो कि कीट के अमाशय का घातक जहर बन जाते हैं।

प्रयोग : विभिन्न फसलों में नुकसान पहुंचाने वाले शत्रु कीटों जैसे चने की सूंडी, तम्बाकू की सूंडी, सेमिलूपर सैनिककीट एवं डायमड बैक मॉथ, आदि के विरुद्ध एक कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर अच्छा परिणाम मिलता है।

उपलब्धता : बाजार में यह बॉयो लेप, बॉयो अस्प, डिपेल, डेल्फीन, बॉयोबिट, हॉल्ट, आदि नामों से उपलब्ध है।

ब) विषाणु (वायरस) :

1) **न्युक्लीअर पॉली हेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.) :** यह एक विषाणु आधारित जैविक कीटनाशक है। ये सूक्ष्म जीवी केवल न्युक्लीक एसिड एवं प्रोटिन के बने होते है एवं वायरस कहलाते है।

प्रयोग : कीट प्रबधन के लिए प्रयुक्त इन वायरसों से प्रभावित पत्ती को खाने से सूंडी 4–7 दिन के अन्तराल में मर जाती है। इस जैविक उत्पाद को 250 ई.एल. प्रति हेक्टेयर की मात्रा से आवश्यक पानी में मिलाकर फसल में प्रायःशाम के समय में छिड़काव करें जोकि कीटों के अंडों से सूंडिया निकलने का समय होता है। इस घोल में दो किलो गुड भी मिलाया जाये तो अच्छे परिणाम मिलते हैं।

उपलब्धता : यह बाजार में हेलीसाईड बायो वायरस, बायो वायरस–एस, स्पोडो साईड, प्रोडेक्टस के नाम से उपलब्ध है।

2) **ग्रेनुलोसिस वायरस (जी.वी.) :** इसका प्रयोग सूखे मेवों के भण्डार कीटों, गन्ने की अगेता तनाछेदक एवं गोभी की सूंडी, आदि के विरुद्ध सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्रयोग : गन्ने और गोभी के प्रबंधन मे एक किग्रा पाउडर को 100 ली. पानी में घोलकर पौधों पर छिडकाव करें।

स) फफूंदी :

1) **बिवेरिया बेसियाना :** यह सफेद रंग की फफूंदी है जो विभिन्न सब्जियों की लेपिडोप्टेरा वर्ग की सूंडियों जैसे : चने की सूंडी, रस चूसने वाले कीट, वुली एफिड, फुदकों, सफेद मक्खी आदि कीटों के प्रबंधन के लिए प्रयुक्त की जाती है।

उपलब्धता : यह बाजार में बायो रिन, लार्वो सील, दमन तथा अनमोल बॉस के नाम से उपलब्ध है।

2) **मेटारॉजियम एनीसोपली :** यह फफूंदी जो कि दीमक, ग्रासहोपर, प्लाटहोपर, बग, आदि के करीब 300 कीट प्रजातियों के खिलाफ उपयोग में लायी जाती है।

प्रयोग : 750 ग्राम मात्रा को स्टीकर एजेंट के साथ 200 ली पानी में मिलाकर एक एकड क्षेत्र में सुबह अथवा शाम को छिडकाव करें।

द) **मित्र सूत्रकृमी :** कीटहारी सूत्रकृमियों की कुछ प्रजातियाँ कीटों के ऊपर परजीवी रहकर उन्हें नष्ट कर देती है और कुछ जीवाणुओं के साथ मिलकर सामूहिक रूप से कीट नियंत्रण में उपयोगी है।

सूक्ष्म जैविक रोगनाशक निम्न प्रकार से है।

1) **ट्राईकोडर्मा :** यह एक प्रकार की मित्र फफूंदी है जो खेती को नुकसान पहुँचाने वाली हानिकारक फफूंदी को नष्ट करती है। इसका प्रयोग दलहनों, कपास, सब्जियों एवं विभिन्न फसलों में पाए जाने वाले मृदाजनित रोग जैसे – उकठा, कॉलर, सडन आद्रपतन, कन्द सडन, आदि बीमारियों को सफलतापूर्वक रोकता है।

उत्पाद : *ट्राईकोडर्मा* की लगभग छह प्रजातियाँ ज्ञात है। लेकिन केवल दो प्रजातियाँ जैसे, *ट्राईकोडर्मा विरडी, ट्राईकोडर्मा हार्जियानम* मिटटी में बहुतायत मात्रा में पाई जाती है।

उपलब्धता : यह बाजार में बायोडर्मा, निपारॉट, अनमोलडर्मा के नाम से उपलब्ध है।

प्रयोग

1) **बीज शोधन :** 5 से 10 ग्राम पाउडर बीज में मिलाया जाता है। परन्तु सब्जियों के लिए 5 ग्राम प्रति 100 ग्राम बीज के हिसाब से उपयोग में लाई जाती है।

2) **भूमि शोधन :** एक किग्रा पाउडर को 25 किग्रा कम्पोस्ट खाद में मिलाकर एक सप्ताह छायादार स्थान पर रखकर गीले बोरी से ढका जाता है ताकि स्पोर अंकुरित हो जांए। फिर इस कम्पोस्ट को एक एकड में मिलाकर फसल की बोआई की जाती है।

3) **खड़ी फसल पर छिड़काव :** पौधे के रोग के लक्षण दिखाई पडने पर प्रारंभिक अवस्था में ही 5 से 10 ग्राम पाउडर को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।

सूक्ष्मजीवों के प्रयोग में सावधानियाँ :

1. सूक्ष्मजीवों पर सूर्य की परा–बैंगनी किरणों का विपरीत प्रभाव पडता है, अतः इनका प्रयोग संध्याकाल में करना उचित होता है।
2. सूक्ष्मजैविक नियंत्रण में आवश्यक कीडो की संख्या एक सीमा से ऊपर होनी चाहिए।
3. सूक्ष्मजीवियों को विशेष रूप से कीटनाशक फफूंदी के उचित विकास हेतु पर्याप्त नमी एवं आद्रता की आवश्यकता होती है।
4. इनकी भंडारण की सीमा कम होती है, अतः इनके प्रयोग से पूर्व उत्पादन तिथि पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

समान प्रतीत होने वाले शब्द

शब्दों के पहचान के अनेक रूप हैं। इनमें से एक रूप वह है जिसमें दो शब्द सामान्यतः एक जैसे लगते हैं परंतु उन शब्दों के अर्थ समान नहीं होते।

१) अवधि - अवधी

'अवधि' अर्थात् 'सीमा', कालावधि आदि
'अवधी' हिन्दी भाषा की एक बोली है।

२) अस्त्र - शस्त्र

'अस्त्र' शत्रु पर फेंककर चलाया जाता है।
'शस्त्र' अर्थात् जिसे हाथ में रखकर चलाया जाता है।

22. नीम के बीज का अर्क : उत्कृष्ट जैविक कीटनाशक

डॉ. रचना पाण्डे, वरिष्ठ वैज्ञानिक, फसल संरक्षण विभाग

श्रीमती पूजा घोंगे, तकनीशियन, फसल संरक्षण विभाग

डॉ. रामकृष्ण जी.आय., वरिष्ठ वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

कृषि क्षेत्र में कीट और उससे संबंधित रोगों के नियंत्रण के लिए कार्बनिक/जैविक खेती एक पर्यावरण के अनुकूल प्रक्रिया है। यह मुख्य रूप से गैर विषैली होती है। तथा इसमें कम निवेश की आवश्यकता होती है। यह बहुत बड़े पैमाने पर जैविक विविधता को बढ़ावा देने तथा पर्यावरण की रक्षा करने के कारण परिस्थितिक संतुलन को बढ़ाती है। हर साल नये नये कीट और रोग लगातार कृषि के लिए खतरे के रूप में सामने आ रहे है जिससे यह फसल की उपज को काफी कम कर देते है। कीट कृषि के लिए एक निरंतर खतरा है। यह वर्ष में पर्याप्त कृषि उपज की हानि का कारण बनते है। पर्यावरण की रक्षा करने के लिए कीटो को नियत्रित करने के प्रभावी तरीकों में से एक कृषि प्रणाली के भीतर जैविक कीटनाशकों का उपयोग है। कुछ लोग कृषि में कीट नियंत्रण के लिए जैविक कीटनाशकों को पसंद करते है। क्योंकि इस प्रक्रिया में गैर विषैले पदार्थों का उपयोग होता है। यह तो विदित ही है कि नीम का पेड एक उष्णकटिबंधीय सदाबहार पेड है जो भारत के साथ–साथ पूरे उष्णकटीबंधीय प्रदेशों में पाया जाता है। नीम एक ऐसा पेड है जो तेजी से बढ़ता है तथा सूखे की स्थिति को भी सहन करता है। नीम के पेड को अक्सर गाँवों और शहरों में हवा के लिए और छाया के लिए लगाया जाता है। भारत में नीम के पेड को इसकी उपचार बहुमुखी प्रतिभा के कारण गाँव फार्मेसी भी कहा जाता है। स्थानीय समुदायों द्वारा कई बीमारियों का भी इलाज करने के लिए नीम के दवाओं का उपयोग किया जाता है। प्राचीन साहित्य नीम के फल, बीज, पत्ते, छाल और जड़ों का उनके औषधीय गुणों के लिए उल्लेख करता है। नीम के विषाणुरोधी, कवकरोधी एवं रोगाणुरोधक होने के भी साहित्य में कई प्रमाण मिले है। नीम पेड से जैविक कीटनाशक तैयार करने में दो प्रमुख चरण शामिल है। पहले चरण में मुख्य रूप से पके बीजों का इकट्ठा करना, सुखाना, भूनना कुचलना और नीम का तेल निकालने के लिए उन्हें दबाना और दूसरे चरण में तेल को पानी का उपयोग करके आवश्यक मात्रा में पतला करके कीटनाशक तैयार करना है। महाराष्ट्र राज्य में नीम के पेड स्थानीय स्तर पर पाये जाते है। जिसे किसान वरदान के रूप में उपयोग में ला सकते है। नीम का पेड पूर्णरूपेण गुण से भरा हुआ परन्तु नीम के बीजों के भिन्न–भिन्न अर्क का अपार प्रभाव फसलों में पाये जाने वाले भिन्न भिन्न हानिकारक कीटो पर देखा गया है। नीम के बीज के अर्क की सबसे बडी विशेषता यह है कि इस अर्क का छिडकाव फसल में पाये जाने वाले मित्रकीट एव परागकण वाहक कीट जैसे कि मधुमक्खियों के लिये बिल्कुल भी घातक नहीं पाया गया है।

फसल हानि को रोकने के लिए खेती प्रणाली के भीतर मुख्य दृष्टिकोणों में से जैविक कीटनाशकों का उपयोग है, और उनमें नीम पेड अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। क्योंकि नीम पेड के फायदों के बारे में सब परिचित ही है। और यह पेड भारत में हर जगह बडे पैमाने पर पाए जाते है। जब मनुष्य के लिए इसके इतने फायदे है तो खेती में हम इसका उपयोग कर अपनी उपज को बढा सकते है। इस में नीम के बीज की गिरी के अर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः इस लेख में नीम के बीज का अर्क बनाने उसके उपयोग एव अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवरण दिया गया है।

कृषि क्षेत्र में नीम कीटनाशक कीट के प्रबधन में अतिशय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। दुनिया भर में कृषि क्षेत्र में कीट और रोगों के व्यवस्थापन हेतु कृत्रिम कीटनाशकों से अकृत्रिम कीटनाशकों तक बड़े पैमाने पर स्पष्ट बदलाव आया है। दुनिया भर में कृत्रिम कीटनाशकों से होने वाले दुष्परिणाम संबंधित जागरूकता बढ़ रही है। यह कीटनाशक ना केवल वनस्पति को हानि पहुँचाते है अपितु यह अन्य जीवित जीवों को भी दुष्प्रभावित

करते है।

नीम के बीज मे नीम बीज गिरी अर्क निकालने की प्रक्रिया

नीम के बीज की गिरी के घोल के लिए निम्नवत सामग्री की आवश्यकता है। 100 लीटर 5% नीम के बीज के अर्क का घोल तैयार करने के लिए आपको चाहिए

- नीम के बीजों की गुठलीयाँ (अच्छी तरह से सूखे हुए)–5 कि. ग्रा
- पानी –100 लीटर
- डिटर्जेंट – 200 ग्राम
- छानने के लिए मलमल का कपडा

नीम के बीज की गिरी का अर्क सूखे नीम के बीज से बनता है। नीम पेड साल में एक बार फल देता है। नीम बीज गिरी अर्क बनाने के लिए नीम के गिरे हुए बीज जमा करने की जगह उन्हें पेड से तोडकर इकटठा करना ही सही तरीका है। क्योंकी जमीन पर गिरे हुए बीज जमीन(मिटटी) के संपर्क मे आने से वह फंगस (कवक) से प्रभावित हो सकते है। नीम बीज फलों को तोडने से पहले यह जानना अत्यत जरूरी है की उसका रंग पूरा पीला होना चाहिए (हरे पीलेरंग के बीज को इकट्ठा नहीं करना चाहिए) नीम पेड के नीचे प्लास्टिक की चटाई / चादर बिछाकर उस पर पेड़ की शाखाओं को लकडी / डंडे से पीटे। गिरे हुए अच्छे फलो को इकट्ठा करें और खराब फल फेंक दें। फिर फलों को अंगुठे और तर्जनी से दबाकर फल का पल्प (गुदा) निकाल दे। अंदर का बीज दुधिया सफेद रंग का होता है। इकटठा बीजों को छाया में 2 से 3 दिन के लिए चटाई या शीट पर उल्टा करके सुखा लें। बीज बारिश और प्रत्यक्ष सूर्यप्रकाश के संपर्क में नहीं आने चाहिए। नीम बीज गिरी का अर्क निकालने के लिए 3 से 7 महीने पुराने बीजों का उपयोग कर सकतें है।

छाया मे नीम के बीज

नीम के बीजकी गिरी

ध्यान रखने हेतु योग्य बाते :

1. सबसे पहले फल देने के मौसम में ही फलों का इकटठा करे और उन्हें छाया में ही हवा में सुखाएं।
2. आठ महिने से अधिक उम्र के बीजों का उपयोग ना करे। इस उम्र से अधिक उम्र के बीज अपनी कार्यक्षमता खो देते है। इसलिए इस प्रकार के बीज नीम बीज की गिरी का अर्क निकालने हेतु उपयुक्त नहीं है।
3. हमेशा ताजा तैयार ही नीम के बीज की गिरी का अर्क का उपयोग करे।
4. योग्य परिणाम प्राप्त करने के लिए इस अर्क का दोपहर 3.30 के बाद ही छिडकाव करें।
5. नीम के बीज ले और बीजों को सौम्य तरीके से पीस ले। ताकी बीज का उपरी आवरण निकल सके। फिर बीजों का छिलका और खराब गुठली हटा दे। अच्छी गुठलीयों को इकट्ठा कर उन्हें दरदरा पीस लें (ध्यान रखे उसका तेल ना निकले)। तैयार पदार्थ को 1 लीटर हल्के साबुन वाल पानी मे मिलाए। छिडकाव करने से पहले इस घोल को छान ले। साबुन युक्त पावडर के घोल को पौधो के पत्तियो पर चिपकने के लिए मदद करेगा। ध्यान रखे पत्तियो पर छिडकाव उपर से नीचे, पौधा पूरी तरह से ढक सके ऐसे छिडकाव करे।

नीम के बीज की गिरी का अर्क और नीम तेल में अंतर

बाजार मे नीम के एक उत्पाद के रूप में नीम तेल भी उपलब्ध है जो नीम के अर्क से अलग है। शुद्ध नीम के बीज का अर्क एक अत्याधिक तरल पदार्थ है जिसे पानी के साथ मिश्रित किया जाता है। नीम का तेल नीम के पौधो से पाया जाता

करके निकाला जाता है।

नीम के बीज की गिरी के अर्क का उपयोग करके घोल बनाने की विधि

प्रति टैंक (10 लीटर क्षमता) के लिए नीम के बीज की गिरी अर्क की आवश्यकता लगभग 500 से 2000 मिली होती है। लगभग 1 एकड़ जमीन के लिए 3–4 कि. ग्रा. नीम गिरी की आवश्यकता होती है। बीजों का बाहरी आवरण हटा दे और सिर्फ गुठली के अंदर मिलने वाली गिरी का प्रयोग करे। यदि बीज ताजे हो तो 3कि.ग्रा. गिरी पर्याप्त है। परतु यदि बीज पुराने है तो 5 कि. ग्रा. गिरी की आवश्यकता होगी।

बीज/गुठलियों को हल्के हाथों से कूट ले, और इसे एक सूती कपडे में बाँधकर लगभग 10 लीटर पानी वाले बरतन में रात भर के लिए भीगोकर रखे। इसके बाद इसे छान लें। छानने पर 6 से 7 लीटर अर्क प्राप्त किया जा सकता है। 500 से 1000 मि.ली. के अर्क 9½ या 9 लीटर पानी में मिश्रित होना चाहिए तथा उसे पतला करना चाहिए। छिडकाव करने से पहले साबुन के 10 मिली घोल उसमें मिलाएँ ताकि यह अर्क पौधों के पत्तो की सतह पर अच्छ से चिपक जाए। फिर कीट के हमले की तीव्रता के आधार पर हम इस अर्क की सांद्रता/गाढापन को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। अर्क तैयार करने के लिए उपयोग किए जाने वाले नीम के बीज कम से कम 3 महिने और ज्यादा से ज्यादा 8 महिने पुराने होने चाहिए। अंतिम प्राप्त अर्क दुधिया सफेद रग का होना चाहिए। नीम के बीज की गिरी का अर्क विभिन्न प्रकार के पत्ते खाने वाले कीड़ों के लिए प्रभावी नियंत्रण प्रक्रिया है।

नीम जैविक कीटनाशक के फायदे

नीम के बीज की गिरी का अर्क कई कीटो को नियंत्रित करता है। इनमें स्टॉक बोरर्स, भृग ईल्ली, तितली और पतंगे शामिल हैं। इसके अलावा बग, पौधे और लीफ–हॉपर, व्यस्कभृग, मीलीबग, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, फल मक्खी, स्केल कीडे आदि भी शामिल है।

जैविक खेती में नीम के बीज की गिरी के अर्क के कई उपयोग और फायदे है। नीम के पेड से प्राप्त कई अन्य उत्पादों के उपयोग और फायदों के अलावा इसमे एंटी फंगल गुण भी है तथा यह एक प्रभावी कीटनाशक भी है।

- इस तैयार करने की विधि अत्यंत आसान है तथा यह कम खर्चीली है।
- यह पर्यावरणीय अनुकूल है।
- यह मित्र कीटों के लिए सुरक्षित है।
- इसके प्रक्षेपन और छिड़काव के लिए उच्च स्तरीय प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।
- इस बनाने के लिए सरल अनुप्रयोग उपकरण और तकनीकों की आवश्यकता है।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

1. नीम स्तनधारियों के लिए गैर–विषाक्त हैं और यह आसानी से विघटित हो जाता है तथा भारत में इसका उपयोग टूथपेस्ट, साबुन, सौंदर्य प्रसाधन, औषधियों और पशुआहार के रूप में किया जाता है। नीम के पौधे की पत्तियों का उपयोग चाय के लिए भी किया जाता है।
2. नीम की रासायनिक सरचना बहुत जटिल है(इस पेड़ में कई विभिन्न प्रकार के यौगिक होते है, और हर एक अलग अलग तरह से कार्य करता है और कीट के जीवन चक्र और शरीर क्रिया विज्ञान को प्रभवित करते है) जिस कारण वैज्ञानिको का यह मानना है की कीटो के अपने अदर इसके लिए प्रतिरोध क्षमता विकसित करने में लंबा समय लगेगा। मित्र कीटों के संरक्षण और कीट प्रतिरोध के विकास को हतोत्साहित करने के लिए आवश्यक होने पर नीम के स्प्रे का उपयोग करें और केवल उन्हीं पौधों पर उसका प्रयोग करें जिन्हें आप जानते है की वह पौधे कीटो से प्रभावित है।
3. नीम के बीज का अर्क कीटो कों तुरंत नहीं मारता है।वह कीटो के भोजन व्यवहार और जीवन चक्र को बदलत है। विश्वसनीय और समाधानकारक नियंत्रण के लिए, नीम के अर्क को कीटों के हमले के प्रारंभिक चरण में ही लागू किया जाना चाहिए।
4. आमतौर पर धूप और मिटटी में 5 से 7 दिन के अदर, नीम पेड़ के उत्पाद अधिक जल्दी ही विघटित हो जाते है, इसलिए आपको समय में ही बाहर से आने वाले नए कीटों से निपटने के लिए बढ़ते मौसम के समय इस आवेदन को फिर से दोहराने की आवश्यकता पड सकती है।
5. नीम गरमी के समय तेजी से काम करता है और अधिक वर्षा से पौधो के उपर का नीम के अर्क का सुरक्षात्मक कवच धुल सकता है। अगर कीटो की समस्या पुनः होतो इस अर्क का पुनः प्रयोग करे।
6. जिस वक्त हमें पौधों (फसल) को पानी देना है तो पानी सिर्फ मिटटी को ही लक्षित कर, इस तरह पानी दे। क्योंकि पानी से पौधों के पत्तियों के उपर का नीम अर्क का आवरण धुल जाएगा।

इस प्रकार यह विदित होता है कि नीम भारतवर्ष में बहुतायत में पाया जाता है एवं इसकी उपयोगिता विज्ञान के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में है। अतः हमें ग्रामीणों के बीच नीम के बीज के अर्क की विशेषता का प्रचार करना चाहिए जिससे किसान भाई अपने बीच ही पाये जाने वाली इस बहुमूल्य वस्तु को पहचान सकें।

23. कपास में मधुमक्खियों द्वारा परागण

डॉ. रचना पाण्डे, वरिष्ठ वैज्ञानिक (कीटविज्ञान), फसल सरक्षण विभाग

डॉ. पूजा वर्मा, वैज्ञानिक (जैवरसायन), फसल उत्पादन विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

हमारा भारत एक कृषि प्रधान देश है। अतः भारत के सर्वांगीण विकास के लिए कृषि का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। यह विकास क्षेत्रफल अनुसार या उत्पादकता दोनों ही रूपों में हो सकता है। अधिकाशतः किसान भाई कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए सर्व सम्भव प्रयास करने के पश्चात भी उचित उत्पादन प्राप्त नहीं कर पाते हैं जिसका एक कारण फसल में उपस्थित पुष्पों का उचित परागण न हो पाना हो सकता है। जैसा कि हम जानते हैं कि पुष्पों के नर बीज का उसी पुष्प या समान प्रजाति के दूसरे पुष्प के अडाणु के सम्पर्क में आना ही परागण है। सफल परागण के बाद ही निषेचन की क्रिया समाप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप पुष्पों से उन्नत किस्म के फल व बीज उत्पन्न होते हैं। परागण मुख्यतः दो रूपों में होता है।

१. **स्वपरागण :** जिसका आशय है कि नर बीज अथवा पराग का उसी पुष्प के अंडाणु पर गिरना व निषेचन की क्रिया का सम्पन्न होना।

२. **परपरागण :** जब एक पुष्प का पराग अपने ही समान प्रजाति वाले दूसरे पुष्प के अंड वर्तिकाग्र पर गिरता है तो इसे परपरागण कहते हैं।

प्रकृति में पाये जाने वाले केवल 5 प्रतिशत पुष्पों में ही स्वपरागण होता है। इसके अतिरिक्त 95 प्रतिशत पुष्प परपरागण के लिए वाहकों पर निर्भर करते हैं। जिनमें से 10 प्रतिशत हवा पर तथा 85 प्रतिशत कीट व अन्य जैविक वाहकों पर निर्भर करते हैं।

मधुमक्खियाँ कीट परागण में सम्मिलित कीटों में से पूरे 80 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती हैं। तथ्यों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि प्रकृति में जैविक विविधता बनाये रखने के लिए पुष्पों का परपरागण अत्यंन्त आवश्यक है।

कपास में परपरागण

कपास में मुख्यतः स्वपरागण होता है क्योंकि कपास के पुष्प में पुंकेसर व वर्तिकाग्र एक ही पुष्प में पाये जाते हैं। बहुत से शोध कार्यों द्वारा विश्व भर के वैज्ञानिकों ने यह प्रमाण दिया है कि यदि कपास में परपरागण को सम्भव कराया जाए तो कपास के उत्पादन में 5 से 50 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि कपास के पुष्पों में मकरन्द का प्रमाण अधिक होता है जो कि मधुमक्खियों का एक प्रमुख आहार है जिसे एकत्र करने के लिए मधुमक्खियां दिन भर पुष्पों पर विचरण करती हैं। यही मकरन्द अन्य कीटों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है क्योंकि मकरन्द मुख्यतः हर प्रौढ़ कीट का आहार होता है। मकरन्द में कार्बोहाईड्रेट होने के कारण यह कीटों के लिए एक ऊर्जावर्धक भोज्य पदार्थ है। कपास के परागकण क्रीमी (हल्के पीले रंग के) पाउडर की तरह होते है। प्रत्यक

कपास के पुष्प से परागण का एकत्रण

परागकण आकार में थोडा बडा कांटेदार, गोलाकार एव भारी होता है तथा बाहर से एक चिपचिपे पदार्थ के आवरण से ढका रहता है। जिस कारण वायु द्वारा कपास में पर परागण सफल नहीं हो पाता है। सभी फसलें जिनके परागकण बडे व चिपचिपे होते है उन्हें परपरागण के लिए किसी जैविक वाहक की आवश्यकता पडती है।

मधुमक्खियाँ पुष्पों पर मकरन्द व पराग के लिए विचरण करती हैं जो कि उनका तथा उनके शिशुओं का आहार है तथा परपरागण को पूरा करती है। कपास के पुष्प में परपरागण के पश्चात निषेचन पूरा होते ही पुष्प पीले से लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं।

कपास को आमतौर पर आंशिक रूप से परपरागित फसल बोला जाता है। कपास में मुख्यतः इटालियन व यूरोपियन मधुमक्खी *एपिस मेलीफेरा* को ही सबसे महत्वपूर्ण पराग–वाहक माना जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय मधुमक्खी *एपिस सिराना*, छोटी मधुमक्खी *एपिस फ्लोरिआ* व बडी मधुमक्खी *एपिस डोरसाटा* को भी कपास में परपरागण करते हुए देखा गया है। मौनपालन में भी मुख्यतः *एपिस मेलीफेरा*, *एपिस सिराना* को ही प्राथमिकता मिलती है, क्योंकि ये मधुमक्खियां आसानी से बक्स में अंदर पाली जा सकती है और इनसे शहद का निष्कासन भी अत्यन्त सरल होता है। कपास में मधुमक्खियों द्वारा परागण एक पूरक प्रबंधन योजना है। वैज्ञानिको द्वारा समय–समय पर अवलोकन किया गया है कि मधुमक्खियो द्वारा परपरागण से कपास में अधिक संख्या में गूलर का विकसित होना प्रति गूलर बीज की संख्या एव बीज भार में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त फसल की परिपक्वता में भी एकरूपता आती है। मधुमक्खियां द्वारा परपरागित फसल में कलियो के झड़ने में कमी, बीज के अंकुरण में वृद्धि, तंतु की गुणवत्ता में वृद्धि देखी गई है।

कपास में मधुमक्खियों के परपरागण की प्रभावोत्पादक्ता को भिन्न–भिन्न तकनीकों से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जा सकता है। यदि एक फसल क्षेत्र को सब तरफ से महीन जाली द्वारा ढककर मधुमक्खी विहीन कर दिया जाए तथा दूसरे फसल क्षेत्र में मधुमक्खियों को आने दिया जाए तो दोनों ही फसल–क्षेत्र के गूलर की तुलना करके तथ्यों को जाना व परखा जा सकता है। यदि कृषक मधुमक्खी पालन करना जानते हैं तो वे जरूरत के अनुसार मधुमक्खी के बक्सों की संख्या को घटा व बढा सकते हैं। इसके अतिरिक्त बक्सों में किए जा रहे मधुमक्खी पालन से मधु व मोम दोनों को ही निष्कर्षित कर अतिरिक्त आय का साधन बना सकते हैं।

मधुमक्खियां एक आदर्श पराग वाहक

मधुमक्खियों का जीवन पालन व शारीरिक रचना इस प्रकार की होती है कि वह प्राकृतिक रूप से ही आदर्श पराग वाहक के रूप में उपस्थित रहती है। मधुमक्खियों के आदर्श पराग वाहक के रूप में मानने के कुछ गुण निम्नलिखित हैं।

1. परागवाहक की तरह इनका सबसे विशिष्ट गुण यह है कि पराग व मकरन्द एकत्र करते समय यह फसल के पुष्पों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाती हैं।
2. मधुमक्खी के शरीर में महीन रोएँ होते हैं जिस कारण परागकण आसानी से इनके शरीर में चिपक जाते हैं। इसके साथ ही मधुमक्खी टांगों में पराग भरकर छत्ते तक ले जाने के लिए पिछली टाँगों में पराग–बास्केट होती हैं।
3. मधुमक्खियों का पूरा जीवनकाल चाहें वह शिशुवस्था में हो या प्रौढावस्था में, आहार के रूप में पराग व मकरन्द पर निर्भर होता है अतः मधुमक्खियाँ वर्ष भर भोज्य पदार्थों को एकत्रित करती हैं तथा इनका भंडारण प्रतिकूल समय के लिए अपने छत्ते के कोष्ठा में रखती है।
4. यदि कृषक, मधुमक्खी पालन भी करता हो तो वह आसानी से इच्छानुसार जरूरत के अनुरूप मधुमक्खियों की संख्या को कम व ज्यादा कर सकता है।
5. मधुमक्खियां फसलों के पुष्पों का परपरागण करते समय कृषि के किसी भी अन्य क्रिया–कलाप से जैसे कि पशुपालन, मशरूम उत्पादन आदि से कोई स्पर्धा नहीं रखती हैं।

परपरागण के लिए मधुमक्खी बक्सों का प्रबंधन

मधुमक्खी के बक्सों को केवल फसल में रखने मात्र से ही मधुमक्खियों द्वारा परागण का लाभ नहीं मिल सकता, इसके लिए कुछ मूलभूत तथ्यों को ध्यान में रखना होगा ताकि कम मेहनत में ज्यादा लाभ हो सके।

मुख्यतः मधुमक्खियों द्वारा परपरागण विद्यमान मौसम की अवस्था, फसल की अवस्था, मौनवंशों की अवस्था, बक्सों का

कपास के पुष्प से परागण का एकत्रण

फसल में वितरण व फसल में उनके आने के समय पर निर्भर करता है।

मधुमक्खियों द्वारा परपरागण का पूर्ण लाभ उठाने के लिए शोधकर्ताओं द्वारा मधुमक्खी बक्सों की संख्या प्रति हेक्टेयर सुनिश्चित की गई है जो कि *एपिस मेलीफेरा* के लिए 3–9 बक्से / हेक्टेयर व *एपिस सिराना* के लिए 2–5 बक्से / हेक्टेयर है। मधुमक्खियाँ प्रायः मकरन्द व पराग को लेने के लिए 1–2 किमी. तक की दूरी तय करती हैं। यदि पुष्प समीप हों तो वह पास से ही पराग व मकरन्द सग्रहित कर वापस आ जाती हैं जिससे उनकी शारीरिक ऊर्जा व समय दोनों ही व्यर्थ नहीं जाते। इसीलिए मधुमक्खी के बक्सो को सदैव फसल के समीप रखना चाहिए। मधुमक्खियों के बक्सों को फसल के समीप लाने से पहले उसके आस–पास के सभी पुष्प वाले खरपतवार को नष्ट कर देना चाहिए ताकी मधुमक्खियाँ उनके पुष्पों की तरफ आकर्षित न हों।

मधुमक्खी के बक्सों को सदैव पूर्व दिशा मे, सूर्य के उदय होने की दिशा की ओर रखना चाहिए जिससे प्रातः ही मधुमक्खियाँ अपने काम पर लग जायें। वैसे भी कपास के पुष्प प्रातः जल्दी ही खुलते जाते है। बक्सों को फसल क्षेत्र में तभी लायें जब पूरी फसल में 10–20% तक पुष्प खिल चुके हों।

बक्सों को फसल में रखते समय और मधुमक्खी के परागण के दौरान यह सुनिश्चित कर लें कि किसी भी प्रकार के रसायन का छिडकाव उस वक्त फसल में न किया गया हो और न ही किया जाए क्योंकि यह जहरीले रसायन मधुमक्खियों के लिए भी प्राणघातक होते हैं।

मधुमक्खियों द्वारा परपरागण कपास के उत्पादन को बढाता है और कपास के तंतु की गुणवत्ता को भी सुधारता है। कपास में परपरागण के लिए मधुमक्खी पालन के प्रयोग से इसके प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ही लाभों का उचित उपयोग किया जा सकता है।

युवक और युवतियाँ अंग्रेजी और दुनियाँ की दूसरी भाषाएँ खूब पढ़ें और जरूर पढ़ें लेकिन उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसाद भारत को और सारे संसार को उसी तरह प्रदान करें जैसे बोस राव और स्वयं कवि रवीन्द्रनाथ ने प्रदान किया है। अगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूँगा कि कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाएँ अथवा वह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊँचे-से-ऊँचा चिन्तन नहीं कर सकता।

– महात्मा गाँधी

समान प्रतीत होने वाले शब्द

१) गिरि–गिरी
'गिरि' अर्थात् पर्वत।
'गिरी' – गिरना।

२) गृह - ग्रह
'गृह' अर्थात घर।
'ग्रह' अर्थात ग्रह–नक्षत्र।

३) बुरा-बूरा
'बुरा' – खराब।
'बूरा – चूर्ण।

४) सेर-सैर
'सेर' – तौल का नाम।
'सैर' – भ्रमण।

24. कपास में गूलर सड़न

- डॉ. दीपक टी. नगराले, वैज्ञानिक
- डॉ. शैलेश पी. गावंडे, वैज्ञानिक
- डॉ. रचना पाण्डे, वरिष्ठ वैज्ञानिक
- डॉ. नीलकंठ हिरेमनी, वैज्ञानिक

फसल सरक्षण विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसधान संस्थान, नागपुर

कपास भारत म उगाई जाने वाली एक मुख्य फसल है। अन्य फसलों की भाँति ही इस फसल में भी कई जैविक एव अजैविक कारक उपज हानि करत है। वैसे तो कपास में पाये जाने वाले कीट एवं रोगो से सभी किसान भाइ परिचित है। परन्तु, पिछले कुछ वर्षों से भारत के प्रमुख कपास उत्पादक राज्यों म कपास की एक नयी और महत्वपूर्ण समस्या यानि गूलर सडन रोग तेजी से उभर कर आई है। जो कि किसानो एव शांधकर्ताओं के लिये चिन्ता का विषय बनी हुयी है। तथापि, भाकृअनुप–केकअनुस, नागपुर द्वारा इसके प्रबधन के लिए रणनीतियों को तैयार किया गया है एवं वर्तमान में इन्हे प्रचारित भी किया जा रहा है। नई समस्या होने क कारण सस्थान में इस गूलर सडन स निपटने के लिए कई अनुसधान प्रयोगशाला एवं प्रक्षेत्र की स्थिति में किए जा रहे है। उच्च आर्द्रता की स्थिति जो की गूलर सडन होने का मुख्य कारण है, की प्रभुत्ता क कारण पिछले 3 वर्षो में गूलर सडन रोग को प्रबलरूप स बढत हुए देखा गया है। यहां यह बात ध्यान दने योग्य है कि कपास की फसल में गुलाबी गूलर सुंडी जो कि खुद में एक बड़ी समस्या है एव गूलर सडन राग का सक्रमण या तो अलग–अलग या एक–एक करक या एक साथ होते पाया जाता हैं। जिस कारण किसान भाइ और कृषि विस्तार अधिकारी गुलाबी गूलर सुंडी एव गूलर सडन राग में अतर नहीं कर पाते हैं, जिस कारण प्रबधन सबन्धित निर्णय लेना मुश्किल हो जाता है। अतः इस लेख म गूलर सडन राग क निदान और प्रबधन क लिए रणनीतियों कि चर्चा विस्तृत रूप में की गयी है। जिससे कृषक गलत रोग को समझ कर कुछ अन्य छिड़काव न करे जो कि केवल पैसे एवं समय का नुकसान है।

कपास में गूलर सड़न रोग

कपास में पाये जाने वाला गूलर सड़न रोग दो प्रकार से होता है जिनमें पहला है आतरिक गूलर सडन राग एव दूसरा है बाह्य गूलर सड़न रोग। जिनक कारक जीव, क्षति के लक्षण एव उपज म हानि सब भिन्न भिन्न है। अतः इनके अन्तर को समझना बहुत आवश्यक है जो कि आग दिया जा रहा है।

आंतरिक गूलर सड़न रोग

नाम से ही पता चलता है कि यह गूलर सड़न रोग गूलर म आतरिक रूप स उपस्थित रहता है। आनतरिक गूलर सडन रोग के कारक जीव में निर्म्नालिखित जीवाणु एव कवक साम्मिलित हैं जीवाणु पटाएया प्रजाति, जैंथामोनस [illegible] मलवेसीरम, कवक/फफूद : निग्रोस्पोरा ओरेजा। निगरानी क समय यह दखने को मिला की आतरिक गूलर सड़न राग कीट के द्वारा की गयी क्षति क लिए अत्यत सवदनशील है, जिसका अर्थ है यदि गूलर म कीटो द्वारा क्षति की गई है तो आतरिक गूलर सड़न राग हाने की सभावना ज्यादा है।

कपास में गूलर सड़न रोग की क्षति के लक्षण :

- अपरिपक्व खुले हर गूलर में अपरिपक्व बीज का होना, गूलरो में विकासशील रेशे (*गॉसिपियम हिर्सुटम*) में शुरूआती दार में फीके, तत्पश्चात हल्के पीले रग के, तथा इसक बाद गुलाबी–लाल से भृरे रग के रेशे के साथ उसमे पतले लसलसे पदार्थ की उपस्थिति दिखाइ देती हैं।
- गूलरों म उपस्थित सक्रमित बीज फूल कर सड सकते हैं।
- कभी–कभी, कुछ गूलरों में किसी किसी स्थान पर छोटे काले धब्बे देखे जा सकते हैं जो हापर, बग और अन्य चूसक कीटों की उपस्थिती के सकेत को दर्शाते हैं जो कि बैक्टीरिया के विकासशील गूलर में सक्रमण करने में सहायक होते हैं।
- आम तौर पर यह बीज सडन रोग, हरे रग के गूलरो को पूरी तरह प्रभावित नहीं करता है और ज्यादातर एक या दो लॉक्यूल तक सीमित रहता है।

- गंभीर संक्रमण की स्थिति में, अपरिपक्व हरे गूलर के लगभग सभी लाक्यूल पूरे तरीके से रोगग्रस्त हो जाते हैं जिसे वैज्ञानिक भाषा में हेडलॉक का बनना कहते हैं।

कीट संचरण : आतंरिक गूलर सडन रोग का एक पौधे से दूसरे पौधे में संचरण कीटों के द्वारा होता है जिसमे मुख्यतः स्टिंक बग एवं लाल कपास बग है।

कपास में गूलर सड़न के रोग का विस्तार

- **प्राथमिक संक्रमण :** फफूंद और बैक्टीरिया के कारण होने वाला प्राथमिक संक्रमण रोगग्रस्त गूलरों में, फसल अवशेषों में और मिट्टी में जीवित रहता है। तत्पश्चात जैविक कारक, जैसे की कीट अपने भोजन के माध्यम से बैक्टीरिया के संचरण में मदद करते हैं।
- **द्वितीयक संक्रमण :** रोग का द्वितीयक संक्रमण मुख्यत अजैविक कारक, जैसे की हवा से संचारित होने वाले कोनिडिया और बैक्टीरिया के द्वारा बारिश की फुहारों और हवा के माध्यम से होता है।

रोग के होने की अवधि : आंतरिक गूलर सडन रोग का प्रारंभिक संक्रमण होने की मुख्य अवधि फसल की बुआई के बाद 60–90 दिनों के चरण के दौरान होती है।

उपज में हानि : इस रोग के द्वारा कपास में लगभग 5–25% तक की उपज हानि दर्ज की जा सकती है।

आंतरिक गूलर सडन रोग कि विभिन्न अवस्थाएँ
(a = श्रेणी 1, b = श्रेणी 2, c श्रेणी 3 एवं d = श्रेणी 4)

बाह्य गूलर सड़न रोग

बाह्य गूलर सड़न रोग गूलरों में बाहर पाया जाता है और हानि का कारण बनता है। कारक जीव : बाह्य गूलर सडन रोग के मुख्य कारक जीव है फफूंद: *कोलेटोट्राइकियम गॉसिपि प्रजाति सेफलोस्पोरियोइड्स, कोलेटोट्राइकियम गॉसिपि, अल्टरनेरिया मैक्रोस्पोरा, डिप्लोडिया गॉसिपिना, फ्यूजेरियम प्रजाति, रेमुलेरिया एरोला, लेसियोडिप्लोडिया थियोब्रोमे, मायरोथेसियम रोरिडम, फोमा एक्सिगुआ, फोमोप्सिस प्रजाति, फाइटोफ्थोरा प्रजाति, राइजोक्टोनिया प्रजाति, कोरायनेस्पोरा कैसिकोला, राइजोपस* प्रजाति जीवाणु: *जैंथोमोनस सिट्रीपीवी मलवेसीरम*

लक्षण

- प्रारंभ में, बाह्य गूलर सडन रोग के लक्षण छोटे से भूरे या/और काले रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं जो कुछ समय के बाद में पूर्ण रूप से बढकर पूरे गूलर में फैल जाते है।
- इसके अतिरिक्त, संक्रमण आंतरिक ऊतकों में फैलने के कारण बीज और लिंट को सडा सकता है। संक्रमित गूलर परिपक्व होने से पूर्व अर्थात समय से पहले खुल जाता है जिस कारण रेशे की गुणवत्ता गंभीर रूप से प्रभावित होती है।
- आमतौर पर उच्च सापेक्षिक आर्द्रता और गर्म मौसम होने पर, कवक की वृद्धि को रोगग्रस्त गूलर पर देखा जा सकता है।
- बाह्य गूलर सडन रोग के ग्रसन से यह संभव है कि रोगग्रस्त गूलर कभी खुले हो नहीं और या फिर समय से पहले ही पौधों पर से नीचे गिर जाये।

रोग के होने की अवधि : बाह्य गूलर सडन रोग का प्रारंभिक संक्रमण होने की मुख्य अवधि मुख्यतः फसल की बुवाई के बाद 90–120 दिनों के दौरान होती है।

उपज में हानि : इस रोग के द्वारा कपास में लगभग 10–50% तक की उपज हानि दर्ज की जा सकती है।

एकीकृत रोग प्रबंधन रणनीतियां : गूलर सडन रोग के प्रबंधन हेतु एकीकृत रोग प्रबंधन रणनीतियां पहचानी गई हैं। जिनका समय पर पालन करने से इस रोग से बचा जा सकता है एवं उपज में होने वाली हानि को भी टाला जा सकता है। गूलर सड़न रोगों (आंतरिक एवं बाह्य) दोनों के एकीकृत उपचार के लिये निम्नलिखित रणनीतियों का पालन करना आवश्यक है।

1. फसल में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से बचें।
2. बारिश द्वारा या अन्य किसी कारण द्वारा होने वाले जल के जमाव से बचने के लिए खेत में उचित जल निकासी की सुविधा प्रदान करें।
3. फसल की बुवाई के समय अनुशंसित इष्टतम दूरी और फसल रोपण के घनत्व का प्रबंधन करें एवं उसका पालन करें।
4. फसल में उपयुक्त पौधों की संख्या का रखरखाव करें।
5. फसल का एकीकृत प्रबंधन करें ताकि फसल को अतिवृद्धि से रोका जा सके।
6. फसल में समय समय पर चूसने वाले कीटों एवं उनके संक्रमण की पूर्ण निगरानी स्क्वारिंग, फूल आने और गूलर के विकास के चरणों के दौरान की जानी चाहिए और उनका संक्रमण आर्थिक हानि स्तर पर पहुँचने से अनुशंसित प्रथाओं के साथ उनका प्रबंधन करना चाहिए।
7. स्क्वारिंग, फूल आने और गूलर के विकास के चरणों के दौरान, लगातार बादलों का मौसम, उच्च सापेक्ष आर्द्रता और रिमझिम बारिश जैसे मौसम की स्थिति, आंतरिक गूलर सडन रोग के संक्रमण में सहायक होती है। अतः पूर्वावधान उपाय के रूप में, कापर आक्सी क्लोराइड 50 डब्ल्यूपी @ 25 ग्राम + [स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट आईपी 90% डब्लु/डब्लु+ टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड आईपी 10% डब्लु/डब्लु] @ 1.5–2 ग्राम को 10 लीटर पानी में मिलाकर आंतरिक गूलर सडन के प्रारंभिक विकास के चरणों के दौरान प्रबंधन के लिए छिडकाव करना चाहिए।
8. बाहरी गूलर सडन रोग से बचने के लिए कार्बेन्डाजिम 50% डब्ल्यूपी/20 ग्राम या क्रेसोक्सिम–मिथाइल 44.3% एससी @ 10 मिली या पाइराक्लोस्ट्रोबिन 20% डब्ल्यूपी @ 20 ग्राम या प्रोपीनेब 70% डब्ल्यूपी @ 25–30 ग्राम (पाइराक्लोस्ट्रोबिन 5%+ मेटिराम 55% डब्लूजी) @ 20 ग्राम या प्रोपिकोनाजोल 25% ईसी @10 मिली या (एजोक्सिस्ट्रोबिन 18.2% डब्लू/डब्लू + डायफेनोकोनाझोल 11.4% डब्लू/डब्लू एससी) @ 10 मिली या (फ्लूकझापायरोझाड 167 ग्राम /ली + पायराक्लोस्ट्रोबीन 333 ग्राम/ली एससी)) के 6 ग्राम को 10 लीटर पानी में मिश्रित कर उसका छिडकाव करें। पहले एवं दूसरे छिड़काव के मध्य कम से कम 15 दिनों का अंतर रखें। यदि किसान भाई इन रणनीतियों को समय रहते पालन करें तो गूलर सड़न रोग से अपनी फसल को होने वाले उपज हानि से बचा जा सकता है।

अंत में इतना ही अपेक्षित है कि किसान भाई भाकृअनुप–कंकअनुसं. के "साप्ताहिक कपास परामर्श" एवं सीआईसीआर कॉटन ऐप की सिफारिशों को गंभीरता पूर्वक अपनाए।

समान प्रतीत होने वाले शब्द

१) ग्रन्थी-ग्रन्थि
'ग्रन्थी' ग्रंथ को पढ़कर समझाने वाला।
'ग्रन्थि' – गाँठ।

२) घुस-घूस
'घुस'– घुसना
'घूस' – बड़ा चूहा अथवा रिश्वत लेना।

३) दिन-दीन
'दिन'– दिवस।
'दीन' – गरीब।

४) दिया-दीया
'दिया' – देना।
'दीया'–दीप।

25. कीट परजीवी सूत्रकृमि कीट नियंत्रण के लिए एक वरदान

डॉ. वृषाली देशमुख, तकनीकी सहायक

श्रीमती मिथिला मेश्राम, तकनीकी सहायक

डॉ. शैलेश गाधंडे, वैज्ञानिक

डॉ. नंदिनी गोकटे नरखेडकर, विभाग प्रमुख

फसल सरक्षण विभाग

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसधान संस्थान, नागपुर

कपास जिसे 'सफेद सोना' भी कहा जाता है, कई विकासशील देशों में एक महत्वपूर्ण नकदी फसल और वस्त्र उद्योग की जीवन रेखा है। कपास एक कीट–प्रेमी पौधा है, जिस पर बुवाई से लेकर इसके विकास के चरण तक कई कीटों एवं रोगों द्वारा हमला किया जाता है। कपास के 30 सबसे महत्वपूर्ण कीट जो फसल के विकास और उत्पादन के लिए हानिकारक हैं, उनमें शामिल हैं; गुलाबी, चित्तीदार और अमेरिकी सुंडी, एफिडस, सफेद मक्खी, जैसिडस, मीलीबग्स, मकडिया और माइटस। बोलवार्म समूह एक गंभीर कीट समस्या है जिससे काफी उपज हानि होती है। इन कीटों को नियंत्रित करने के लिए अक्सर कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। देश में इस्तेमाल होने वाले लगभग 80% कीटनाशक कपास में होते हैं। कृत्रिम कीटनाशकों के अधाधुंध उपयोग का पैदावार के साथ कोई सबंध नहीं है, बल्कि इसने कृषि–पारिस्थिति तंत्र को भी अस्त–व्यस्त किया है। पर्यावरणीय खतरों और कीटनाशकों की विषाक्तता के साथ–साथ कीटनाशकों के प्रतिरोध के बारे में बढती जागरूकता ने कीट नियत्रण के वैकल्पिक साधनों के लिए अनुसंधान को प्रेरित किया है। कृषि में रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग ने पर्यावरण पर कीटनाशकों के खतरनाक प्रभावों के बारे में चिंता व्यक्त की। अतः ऐसे तरीकों की तत्काल आवश्यकता है जो पर्यावरण के अनुकूल हों। प्रतिरोध का विकास और नए बायो–टाइप का उदय रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग के बारे में एक और चिंता है जो इन कीट प्रबधन विधियों में बदलाव के लिए प्रेरित करती है। जैविक नियंत्रण एक आकर्षक विकल्प है जो पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित है और फसल सुरक्षा में व्यवहार्य है। विभिन्न फसल पारिस्थितिक तंत्रों में जैव–कारकों पर आधारित उत्पादों के सफल अनुप्रयोग में जैव–नियत्रण कारकों की जैव विज्ञान और अनुकूलन क्षमता को समझना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कीट परजीवी सूत्रकृमि (ईपीएन) को कीटों (विशेषरूप से मिट्टी में रहने वाले) के नियत्रण के लिए सबसे प्रभावी, सुरक्षित और गैर–प्रदूषणकारी जैव–नियत्रण कारकों में से एक के रूप में मान्यता दी गई है जो प्रमुख फसलों और फलों के पेड़ों को गभीर नुकसान पहुँचाते हैं।

कीट परजीवी सूत्रकृमि नरम शरीर वाले, गैर–खडवाले गोलाकार होते हैं। कीट परजीवी सूत्रकृमि आर्थ्रोपोड के परजीवी हैं और प्राकृतिक रूप से मिट्टी के वातावरण में होते हैं और कार्बनडाइऑक्साइड, कंपन और अन्य रासायनिक सकेतों के जवाब में अपने मेजबान का पता लगाते हैं। कीट परजीवी सूत्रकृमि और एक संक्रामक किशोर (आईजे) चरण के रूप से सचारित होते हैं जो सक्रिय रूप से कीट मेजबान पर आक्रमण करते हैं। वे हमेशा सहजीवी बैक्टीरिया से जुड़े होते हैं जो मेजबान संक्रमण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जीवन चक्र : सभी ज्ञात ईपीएन प्रजातियाँ एक समान जीव विज्ञान साझा करती हैं। एक मेजबान के बाहर जीवित रहनेवाला एकमात्र चरण तीसरा चरण संक्रामक किशोर (आई जे) या 'डाउर' किशोर है। जीवनचक्र में संक्रामक किशोर अवस्था (आई ज) कीट परजीवी सूत्रकृमि का एकमात्र मुक्तजीवन चरण है। किशोर अवस्था मेजबान कीट में स्पाइरेक्ल, मुह, गुदा, या कुछ प्रजातियों में अंतर्विभाजक झिल्लियों के माध्यम से प्रवेश करती है, और फिर अपने सहजीवी जीवाणुओं को कोशिकाओं को उनकी आंत से कीट के हेमोलिम्फ में छोडती है। कीट हेमोलिम्फ में बैक्टीरिया की संख्या में वृद्धि होती हैं और संक्रमित मेजबान आमतौर पर 24 से 48 घटों के भीतर मर जाता है। मेजबान की मृत्यु के बाद, सूत्रकृमि मेजबान ऊतक पर खाना जारी रखते हैं, परिपक्व होते हैं और प्रजनन करते हैं। संतति सूत्रकृमि वयस्क तक कई किशोर अवस्थाओं में विकसित होते हैं। उपलब्ध संसाधनों के आधार पर

मेजबान शव के भीतर एक या अधिक पीढ़िया हो सकती हैं और बडी संख्या म संक्रामक किशोरा को अतत: अन्य मेजबानों को सक्रमित करने और अपने जीवनचक्र को जारी रखने के लिए पर्यावरण मे छोड दिया जाता है।

कीट परजीवी सूत्रकृमि हेटरोरहैबडिटिड और स्टीनरनेर्मेटिड : कीट प्रबंधन कार्यक्रमों में जैविक कीटनाशकों के रूप म दो परिवारों (हेटरोरहैबडिटिड और स्टीनरनेमटिड) के प्रजातियों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया गया है। कीट परजीवी सूत्रकृमि एकीकृत कीट प्रबंधन कार्यक्रमो मे अच्छी तरह से समावित होते हैं क्योंकि उन्हें मनुष्यों के लिए गैर–विषैले माना जाता है, उनके लक्षित कीट के लिए उन्हें अपेक्षाकृत विशिष्ट, और मानक कीटनाशक उपकरण के साथ लागू किया जा सकता है। हेटरोर्हाब्डिटिड और स्टीनरनेमेटिड दोनों परस्पर रूप से जेनेरा फोटोरेबडस और झीनोरेबड्स क्रमशः के बैक्टीरिया से जुड़े हुए हैं। वर्तमान में, फोटोरेबडस की 19 प्रजातियाँ और झीनोरेबड्स की 26 प्रजातियाँ हैं। सूत्रकृमि और जीवाणु के बीच संबंध अत्यधिक विशिष्ट है। प्रकृति में, बैक्टीरिया मे कोई संक्रामक क्षमता नहीं होती है और वे सूत्रकृमि या कीट मेजबान के बाहर नहीं रह सकते हैं और वे सूत्रकृमि द्वारा मेजबान से मेजबान तक पहुंचाये जाते हैं। हालांकि, विषाणु और सेप्टीसीमिया के कारण प्रतिरक्षा प्रणाली के दमन के माध्यम से कीट मेजबान को मारने में बैक्टीरिया एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

प्रजनन की क्रिया हेटरोर्हाब्डिटिड और स्टीननमेटिड सूत्रकृमि में भिन्न होता है। हेटरोरहैडिटिड सूत्रकृमि के संक्रामक किशोर उभयलिंगी वयस्क बन जाते हैं लकिन अगली पीढी के सदस्य नर और माद। दोनों पैदा करते हैं जबकि स्टीनरनेर्मेटिड सूत्रकृमि में सभी पीढियों का उत्पादन नर और मादा (गोनोकोरिसिज्म) द्वारा किया जाता है। यदि कीट हेटरोर्हाबडिटिडस द्वारा मारे जाते हैं तो कीट का शव लाल से गहरा लाल हो जाता है और अगर स्टीनरनेमेटिड्स द्वारा मारा जाता हैं तो कीट का शव भूरा, पीला या नारंगी रंग हो जाता है। मेजबान शरीर का रंग मेजबानों मे बढने वाले पारस्परिक बैक्टीरिया के मोनोकल्चर द्वारा उत्पादित वर्णक का सकेत है।

कीट परजीवी सूत्रकृमि की सफलतापूर्वक कीट प्रबंधन में उपयोग की कुंजी :

1. इनका जीवनचक्र तथा कार्यपद्धति जानना।
2. प्रत्येक कीट प्रजाति के उपयुक्त सूत्रकृमि का उपयाग।
3. इनके उपयोग का समय निर्धारण करना।
4. इनका उपयोग सही परिस्थितयों में करना।
5. यह जीवित कीटनाशक है, इनके रख–रखाव के लिए विशेष सावधानियाँ बरतना जरुरी है।

सूत्रकृमियों का प्रभावी रूप से उपयोग :

1. जैविक कीट प्रबंधन की सफलता इनका उपयोग कीड़ों की कमजोर अवस्था में करने से अच्छा परिणाम मिलता है।
2. सुबह या संध्या के समय परजीवी सूत्रकृमि का उपयाग फायदेमंद तथा उपयोगी माना जाता है।
3. प्रत्येक कीट प्रजाति के लिए उपयुक्त सूत्रकृमि की प्रजाति का उपयोग जरुरी है। इसलिए मेजबान कीड़ों की प्रजाति भी निर्धारण करना आवश्यक है।
4. पर्यावरण अनुकूलता, कीट परजीवी सूत्रकृमि की उपयोगिता में खासा असर डालती है। परजीवी सूत्रकृमि और फसल का क्षेत्र सामान हो तो बेहतर नतीजे मिल सकते है तथा सफलतापूर्वक कीड़ो का प्रबंधन हो सकता है।
5. प्रबंधन हेतु उपयोगी कीट परजीवी सूत्रकृमि अन्य प्रबंधन से तुलनात्मक दृष्टी से फायदेमंद होना जरुरी है।
6. इस्तेमाल किये जाने वाले कीट परजीवी सूत्रकृमि का एकज गुणवत्ता में श्रेष्ठ होना जरुरी है।

ईपीएन के लाभ :

1. ईपीएन में एक विशेष कीट को संक्रमित करने के साथ–साथ अन्य कीडों को भी संक्रमित करने की क्षमता होती है।
2. मनुष्यों आर पर्यावरण के लिए अत्यधिक सुरक्षित। कोई सुरक्षा उपकरण की आवश्यकता नहीं है, कोई अवशिष्ट प्रभाव नहीं है, कोइ भूजल संदूषण नहीं है और यह परागणकों के लिए सुरक्षित हैं।
3. ईपीएन आमतौर पर 24–48 घंटों की अवधि में कीडों को मारता है।
4. उनका उपयोग पारंपरिक अनुप्रयोग उपकरण के साथ में इस्तेमाल किया जा सकता है।
5. बहुत कम या कोइ पंजीकरण आवश्यक नहीं है।
6. ईपीएन का उपयोग करते समय अन्य रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है।
7. ईपीएन के प्रयोग से पर्यावरण पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।
8. ईपीएन को विवो और इन विट्रो (ठोस और तरल संस्कृति माध्यम) द्वारा सख्या मे बढाया जा सकता है।
9. ईपीएन के जीवित रहने और संक्रामकता के लिए पर्याप्त नमी और तापमान की आवश्यकता होती है।
10. ईपीएन में मेजबान कीटों का पता लगाने और उन्हें मारने की क्षमता है।
11. ईपीएन या उनसे जुड़े बैक्टीरिया का स्तनधारियों या पौधों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

ईपीएन से जुड़े कुछ अन्य तथ्य :

1. उत्पादन में उच्च लागत।
2. नेमाटोलॉजी में आवश्यक श्रम, ज्ञान और कौशल की कमी।
3. सीमित शेल्फ जीवन और प्रशीतित भंडारण की आवश्यकता।
4. निर्माण और गुणवत्ता नियंत्रण में कठिनाइयां।
5. सूत्रकृमि के जीवित रहने और सक्रामकता के लिए पर्याप्त नमी और तापमान की आवश्यकता होती है, पूर्व विकिरण के प्रति संवेदनशीलता, कई कीटनाशकों (नेमेटीसाइडस, फ्यूमिगेंट्स और अन्य) के घातक प्रभाव, घातक या प्रतिबंधात्मक मिट्टी के गुण (उच्च लवणता, उच्च या निम्न पीएच, आदि) की आवश्यकता होती है।

ईपीएन का उपयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें

1. मिट्टी के तापमान, मिट्टी की नमी, सूरज की किरणों से बचाने के लिए ईपीएन का इस्तेमाल करें।
2. कीट के साथ उपयुक्त सूत्रकृमि परजीवी वाहने वाली रणनीति का मिलान आवश्यक है क्योंकि खराब मेजबान उपयुक्तता ईपीएन के अनुप्रयोग में सबसे आम गलती है।
3. इसके अलावा, खेत की खुराक, मात्रा, सिंचाई और उपयुक्त आवेदन विधि, जैसी अनुप्रयोग रणनीतियां बहुत महत्वपूर्ण हैं।

'भारत' जमीन का टुकड़ा नहीं,
जीता जागता राष्ट्रपुरूष है।
हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,
पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे है,
पूर्वी और पश्चिमी घाट, दो विशाल जंघाएँ हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है।
यह वन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है,
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।
इसका कंकर–कंकर शंकर है,
इसका बिन्दु– बिन्दु गंगाजल है।
हम जियेंगे तो इसके लिए,
मरेंगे तो इसके लिए_।

– अटल बिहारी वाजपेयी

26. पादप परजीवी सूत्रकृमि : अध्ययन तथा प्रबंधन

श्रीमती मिथिला मेश्राम, तकनीकी सहायक
डॉ. वृषाली देशमुख, तकनीकी सहायक
डॉ. शैलेश गावंडे, वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. दीपक नगराले, वैज्ञानिक
डॉ. नंदिनी गोकटे नरखेडकर, विभाग प्रमुख
फसल सरक्षण विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पिछले दो दशको में पादप परजीवी सूत्रकृमि को विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों मे फसल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण सीमित कारक के रूप में मान्यता दी गई है। पादप परजीवी सूत्रकृमि की कई प्रजातियों के कारण कपास मे गंभीर नुकसान होने की सूचना मिली है, जो एक उच्च मूल्य वाली व्यावसायिक फसल है।

सूत्रकृमि के बारे में

पादप परजीवी सूत्रकृमि छोटे सूक्ष्म कृमि होते हैं और मिट्टी में प्रचुर मात्रा मे पाए जाते हैं। जब सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखा जाता है, तो पादप परजीवी सूत्रकृमि पतले होते हैं, आमतौर पर अखंडित, 2 मिमी से कम लंबाई व सर्पाकार चाल से चलते हैं। शायद ही कोई फसल इन सूक्ष्म जीवों के हमले से मुक्त हो। वर्तमान में पादप परजीवी सूत्रकृमि की 24 प्रजातियों में ऐसी प्रजातियाँ शामिल हैं जो आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि सूत्रकृमि क्षति के कारण विश्व कृषि उत्पादन का लगभग 10% नष्ट हो जाता है। पादप परजीवी सूत्रकृमि सर्वव्यापी होते हैं और फिर भी उनकी उपस्थिति आमतौर पर तब तक महसूस नहीं की जाती जब तक कि सर्वोत्तम कृषि संबंधी प्रथाओं के बावजूद उपज में निरंतर गिरावट की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। सूत्रकृमि हमले के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान में केवल उपज में कमी नहीं होती है, बल्कि अन्य पहलू जैसे मिट्टी से उपलब्ध पोषक तत्वों का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए संक्रमित जडों की कम क्षमता, या सूत्रकृमि को नियंत्रित करने के प्रयास में गैर नकदी फसलों को उगाना आदि सम्मिलित है। हालांकि, सभी सूत्रकृमि फसल के पौधों पर हमला नहीं करते हैं। कुछ कीडों पर हमला करते हैं, कुछ बैक्टीरिया को खाते हैं जबकि अन्य का कवक भोजन हैं। कुछ अन्य सूत्रकृमि दूसरे अन्य सूत्रकृमियों पर आक्रमण करते हैं और उन्हें खा जाते हैं। इन सूत्रकृमियो का उपयोग अन्य फसल पीडको और रोगजनकों जैसे कीट, कवक और खरपतवार के जैविक नियत्रण के लिए किया जा रहा है। इस लेख में केवल उन्हीं सूत्रकृमियों का वर्णन किया गया है जो पौधों को खाते हैं।

प्राकृतिक वास

अधिकांश पौधे परजीवी सूत्रकृमि प्रजातियां, जडो से भोजन लेती हैं। सभी पादप सूत्रकृमियो को अंडे, किशोर या वयस्क के रूप में जीवन चक्र का कम से कम एक हिस्सा मिट्टी में गुजारना पडता है। सूत्रकृमि परजीवी रूप से एक्टो (बाहर), सेमी–एंडो (आंशिक रूप से अदर) या एंडो (आतरिक रूप) से जड में रह सकते हैं। पादप परजीवी सूत्रकृमि एक सकीर्ण मुँह वाले भाले के रुप मे पाये जाने वाले मुखांग से खाते हैं, जिसे स्टाइललेट कहा जाता है।

पादप परजीवी सूत्रकृमि कई प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहते हैं। ज्यादातर मामलों में अंड, किशोरों या वयस्को की तुलना में सूखे से बेहतर तरीके से बच सकते हैं। कुछ किशोर अवस्थाएँ दूसरों की तुलना में अधिक सहिष्णु हो सकती हैं। कुछ सूत्रकृमियों के अंड मादा शरीर में रहते है व मादा के शरीर की एक पक्की पुटी बन जाता है कुछ सूत्रकृमि अंड का जिलेटिनस अंडे की थैली में रखते है, जो अंडे का सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार सूत्रकृमि को प्रतिकूल वातावरण से बेहतर सुरक्षा मिलती है।

भारत में कपास सूत्रकृमि का वितरण

कपास के साथ लगभग 19 पादप परजीवी सूत्रकृमि की उपस्थिति दर्ज की गई हैं। इनमें से भारतीय सदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण सामान्य प्रजातियां रोटिलेंचुलस रेनिफोर्मिस हैं, जिन्हे आमतौर पर रेनिफोर्म सूत्रकृमि, मेलोइडोगाइन इनकॉग्निटा (जड

गॉठ सूत्रकृमि), होप्लालेमस (लांस सूत्रकृमि) के रूप में जाना जाता है। मध्य और दक्षिणी भारत में कपास पर प्रमुख सूत्रकृमि को रेनिफार्म सूत्रकृमि के रूप में दर्ज किया गया है, जबकि उत्तरी कपास उगाने वाले क्षेत्रों में, जड गॉठ सूत्रकृमि महत्वपूर्ण है।

रेनीफॉर्म सूत्रकृमि

रेनीफॉर्म सूत्रकृमि (आर. रेनिफोर्मिस), जिसे पहली बार हवाई, यूएसए से वर्णित किया गया है, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में व्यापक है। जैसा कि नाम से सकेत मिलता है, रेनिफार्म सूत्रकृमि की मादा, विशिष्ट गुर्दे के आकार की होती है।

जीव विज्ञान :

रेनीफार्म सूत्रकृमि की परिपक्व मादाऐं गतिहीन व जडों में आशिक रूप से अंदर होती है ये सूत्रकृमि कॉर्टिकल पेरेन्काइना, पेरीसाइकिल या फ्लोएम से खाद्य ग्रहण करता है। दूसरे चरण के बच्चे लार्वा अंडो से निकलते हैं। दूसर चरण के बच्चे बिना खाएं तीन आरोपित मोल्ट के माध्यम से अपरिपक्व मादा व नर में परिवर्तित होते हैं। संक्रामक और खाने वाली अवस्था केवल अपरिपक्व मादा तक ही सीमित हैं। आर. रेनिफोर्मिस में मादा किडनी के आकार की एव डिंभक व नर वर्मीफॉर्म आकार के होते है। प्रजनन आम तौर पर उभयचर (यौन) होता है और शायद ही कभी आनुवांशिकी (अलैंगिक) होता है। लगभग 70 अडे एक लेसदार आव्यूह में मादा द्वारा रखे जाते हैं। इस अडे की थैली पर अक्सर मिट्टी के कण चिपक जाते है। इनका जीवन चक्र 17–30 दिनों में पूरा हो जाता है और प्रत्यक मादा औसतन 66 अंडे प्रति दिन देती है। फसलकाल के दौरान तेजी से इनकी जनसंख्या का विस्तार होता है। विकास के चरणों की अवधि और उर्वरता पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। यह देखा गया है कि जीवित बीजों द्वारा उत्पादित रसायन शायद अंकुरित बीजों के लिए आर. रेनिफोर्मिस के आकर्षण का कारण बनते हैं। इनके द्वारा किसी विशिष्ट जड क्षेत्र को प्राथमिकता नहीं दी जाती है और सूत्रकृमि प्रवेश जड के सिरे को छोडकर जड में प्रविष्ट करती है। सूत्रकृमि को प्रजनन के लिए इष्टतम मिट्टी की नमी 25–30% चाहिए। यह एक आश्चर्य की बात है कि आर. रेनिफोर्मिस की सक्रमणकारी अवस्था 25 महीने से अधिक समय तक मेजबान के बिना जीवित रह सकती है। यहा सूखी मिट्टी (3. 3% नमी) में भी 7 महीने के लिए 20–30 डिग्री सेल्सियस पर जीवित रहने की बात भी वैज्ञानिको ने मानी है। सूत्रकृमि के प्रजनन को प्रभावित करने वाला मृदा का पीएच भी एक महत्वपूर्ण कारक है। आम तौर पर, सूत्रकृमि 4.8 और 5.3 के बीच इष्टतम पीएच के साथ थोडी अम्लीय मिट्टी में सबसे अच्छा पनपता है। लवणीय परिस्थितियो में भी, पौधों की वृद्धि को कम करने के लिए सूत्रकृमि को मुख्य कारक के रुप में देखा गया है। शायद सूत्रकृमि का सीमित विकास, सूत्रकृमि पर किसी प्रतिकूल प्रभाव के बजाय खराब जड वृद्धि के कारण होता है। हमलावर किशोरों के अपने जीवन चक्र को पूरा नहीं करने के मामले में, आबादी का एक छोटा प्रतिशत हमेशा प्रजातियों के अस्तित्व और निरंतरता को सुनिश्चित करने के लिए रहता है।

जड गॉठ (रूट नॉट) सूत्रकृमि :

रेनीफॉर्म सूत्रकृमि के अलावा, जड गॉठ सूत्रकृमि की मेलोइडोगाइन प्रजातियाँ पूरे भारत में फैली हुई हैं। एम. इनकॉग्निटा और एम. एक्रोनिया की केवल क्रमशः 3 जाति और 4 जाति कपास को परजीवी बनाने के लिए जाने जात हैं। जड गॉठ सूत्रकृमि सक्रमण का सबसे विशिष्ट लक्षण जडों पर गॉठ जैसी गॉठ का दिखना है। भारत में, एम. इनकॉग्निटा पंजाब और हरियाणा में *जी. हिरसुटम* (अमेरिकी) और *जी. अर्बोरियम* (देसी) कपास पर व्यापक है। हरियाणा में सिरसा और हिसार के आसपास के क्षेत्रों में कपास के खेतों में कमजोर और खराब उगने वाले पौधे देखे जा सकते हैं। गुजरात में कपास पर *एम. इनकॉग्निटा* और *एम. जावानिका* दोनो द्वारा हमला किया जाता है, जिसमें प्रति 200 ग्राम मिट्टी में सबसे अधिक 1456 की आबादी दर्ज की गई है। प्रति 1000 ग्राम मिट्टी में 27 अंडे/किशोरों की सहनशीलता सीमा बताई गई है। अन्य अध्ययनों ने मिट्टी के प्रति 100 सेमी^{3} में 100 अंडे/किशोर सहनशीलता की सीमा निर्धारित की है। हरियाणा राज्य के हिसार में 4.0 के जड गॉठ इंडेक्स के साथ उपज में 17.7 से 19.9% की कमी दर्ज की गई है। लक्षण रूट गॉल, जड गॉठ सूत्रकृमि सक्रमण का सबसे विशिष्ट लक्षण है। कपास पर गॉल का व्यास 1/4 इंच तक हो सकता है जो कई सक्रमणों में बडे पित्त का निर्माण कर सकता है। हालाकि, कपास की जडे काष्ठीय होने के कारण, गॉठ उतनी बड़ी नहीं हो सकती है। सक्रमित पौधों में जडे छोटी व उथली पार्शव जडें होती हैं। जमीन के ऊपर के लक्षण पानी और पोषक तत्वों के अवशोषण और स्थानान्तरण के कार्यों में जडों की दुर्बलता की अभिव्यक्ति हैं। स्पष्ट रूप से संक्रमित पौधे फल पैदा करने के लिए सामान्य पौधों की तुलना में कम ऊर्जा का योगदान करते हैं। सबसे ज्यादा क्षति तब होती है जब मौसम के शुरूआती दिनों में पौधे संक्रमित हो जाते हैं। संक्रमित पौधे दिन में जल्दी मुरझा जाते हैं और तनाव से उबरने में समय लेते हैं। सूत्रकृमि सक्रमण का विशिष्ट लक्षण पौधों की खराब वृद्धि को दर्शाता है जो हर साल परिधिगत रूप से आगे बढते हैं। जनसंख्या की गतिशीलता और क्षति सीमा फसल के मौसम के दौरान जड गॉठ सूत्रकृमि जनसंख्या तेजी से बढती है।

लांस सूत्रकृमि :

होप्लालेमस प्रजाति, जिसे आमतौर पर लांस सूत्रकृमि के रूप में जाना जाता है, पौधों की स्थापना को बुरी तरह प्रभावित

करते हैं। हेलिकोटिलेन्कस की कुल संख्या या छह प्रजातियाँ कपास को परजीवी बनाने के लिए जानी जाती हैं। सबसे अधिक होने वाली प्रजातियाँ *एच. सेन्हालसेंटी* और *एच. इंडिकस* हैं। भारत में कपास की फसल में इस सूत्रकृमि पर शायद ही कोई कार्य हुआ हो। लांस सूत्रकृमि प्रजातियाँ अनिवार्य रूप से बाहरी परजीवी हैं, परन्तु कभी–कभी अर्ध बाहरी परजीवी बन जाती हैं। सूत्रकृमि फ्लोएम पैरेन्काइमा और फ्लोएम तत्वों पर भोजन करते हैं। संवहनी क्षेत्र के प्रवेश के कारण जब जड़ें गुफा होती है, संवहनी तत्व विभेदित नहीं होते हैं जो फ्लोएम पैरेन्काइमा के असामान्य विभाजन, कोशिका तत्वों के अव्यवस्था और अंततः कोशिका मृत्यु की ओर जाता है। गंभीर रूप से शामिल ऊतक सूज जाते हैं, और प्रांतस्था की बाहरी कुछ परतें भूरे रंग की दिखाई दे सकती हैं। प्रांतस्था में बड़ी गुहाएं बन सकती हैं जो संवहनी तत्व के केंद्रीय कोर से अलग हो जाती हैं। सूत्रकृमि आमतौर पर जाइलम को नहीं खाता है, लेकिन इसकी गतिविधियों के परिणामस्वरूप जाइलम वाहिकाओं को व्यापक नुकसान होता है। टाइलोसिस क्षतिग्रस्त जाइलम पोत में होने के लिए जाना जाता है जिससे पानी के उठाव और स्थानान्तरण में व्यवधान होता है।

लीजन सूत्रकृमि :

जैसा कि नाम से पता चलता है कि लीजन सूत्रकृमि *प्रेटीलेंकस* प्रजाति का सबसे विशिष्ट लक्षण है। इनके संक्रमण से जड़ों पर घावों की उपस्थिति देखी जा सकती है जो शुरू में छोटे, पानी से लथपथ धब्बे के रूप में दिखते हैं। ये धब्बे जल्द ही भूरे और फिर लगभग काले हो जाते हैं। और फिर धीरे–धीरे बढ़ने लगते हैं।

यह छोटे धब्बे आपस में जुड़कर बड़ा धब्बा बनाते हैं जिससे जड़ काली भूरी हो जाती है। यह धब्बे भोजन के दौरान हाइड्रोलाइटिक एन्जाइमों की रिहाई के कारण बनते हैं। सामान्य तौर पर, परिमित लक्षण आहार स्थल तक सीमित होते हैं। चोट के क्षेत्रों में रसायनी यौगिकों के जमा होने के कारण भी जड़ों में भूरापन होता है। संक्रमित छोटे पौधे मध्यम से गंभीर रूप में अलग–अलग भाग में पीले से क्लोरोटिक पत्तियों के साथ दिखते हैं। लीजन सूत्रकृमि के संक्रमण से फसल की वृद्धि का रुकना, और धीरे–धीरे मुरझाना भी सम्मिलित है।

प्रबंधन रणनीतियाँ एवं निगरानी :

निगरानी, फसल विकास के संबंध में सूत्रकृमि जनसंख्या घनत्व का आकलन है। एकीकृत सूत्रकृमि प्रबंधन के तहत सटीक निदान के लिए मिट्टी और जड़ के नमूने एकत्र करना आवश्यक है। नमूना क्षेत्र को फसल स्वरूप या मिट्टी की बनावट में अंतर को प्रतिबिंबित करना चाहिए। नमूनाकरण की सटीकता और अर्थशास्त्र के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है। नमूना क्षेत्र जितना छोटा होगा, नमूनाकरण उतना ही सटीक होगा। फसल के मौसम के दौरान किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता के बिना 6–12 इंच की गहराई से नमूना लिया जा सकता है।

सांस्कृतिक प्रबंधन

मृदा सौरकरण

लगभग पूरे वर्ष उपलब्ध धूप की प्रचुरता के साथ, इस तकनीक का व्यापक रूप से भारत जैसे गर्म उष्णकटिबंधीय देश में सूत्रकृमि के प्रबंधन के लिए उपयोग किया जा सकता है। धूमन और सौरकरण के लिए पॉलीइथाइलीन के कवर का प्रयोग तकनीक को अधिक व्यवहार्य बना सकता है। समस्याग्रस्त, तेजी से खराब होने वाले प्लास्टिक कवर का प्रयोग जो कार्बनिक पदार्थों में जुड़ सकता है या खाद के रूप में कार्य कर सकता है, उपयोग के बाद पॉलीथीन पात्र को पुनः प्राप्त करने की बोझिल प्रक्रिया की समस्या का समाधान करेगा। फसल चक्रण मिट्टी में सूत्रकृमि की एक से अधिक प्रजातियाँ उपस्थित हो सकती हैं। अतः स्थानीय रूप से सूत्रकृमि के मूल्यांकन करने की भी आवश्यकता होती है।

सांस्कृतिक प्रबंधन विधियों में सूत्रकृमि प्रबंधन के लिए बिना किसी जहरीले रसायनों या अवशेषों की समस्याओं के कम लागत वाले विकल्पों से लाभ मिलता है। दूसरी तरफ, हालांकि, कम दक्षता के कारण ये हमेशा लागू नहीं होते हैं और सामान्य सांस्कृतिक प्रथाओं में भी हस्तक्षेप करते हैं। गर्म उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय कपास क्षेत्रों में सूत्रकृमि प्रबंधन योजना के लिए आवश्यक जानकारी में फसल इतिहास, फसल योजना, मिट्टी की बनावट और सूत्रकृमि जनसंख्या में कमी के लिए अनुमानित अनुमान शामिल हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि अतिसंवेदनशील फसल की जड़ को कटाई के तुरंत बाद हटा दिया जाना चाहिए और नष्ट कर दिया जाना चाहिए। आम तौर पर कपास की खेती में पाए जाने वाले खरपतवार मेजबान, *ट्रिएन्थेमा ऐमारेंथस* प्रजाति के रूप में *सोंगोगाइना* और *कॉनवॉल्वुलस अर्वेन्सिस* रेनीफार्म सूत्रकृमि के लिए अच्छे मेजबान हैं। खेतों को खरपतवार मुक्त रखने से सूत्रकृमि आबादी को सामान्य रूप से नियंत्रण में रखने में मदद मिलेगी। ग्रीष्मकालीन जुताई का भारत में गर्मी के महीनों में नर्मियों की जुताई के लिए लाभकारी रूप से उपयोग किया जा सकता है क्योंकि यह सूत्रकृमि आबादी को कम करने में एक बहुत प्रभावी कृषि संचालन के रूप में जाना जाता है। साप्ताहिक अंतराल पर बार बार जुताई करने से मिट्टी में सूत्रकृमि की आबादी लगभग 50% कम हो जाती है और इस प्रकार यह सूत्रकृमि प्रबंधन का सबसे व्यवहार्य विकल्प हो सकता है। गहरी जुताई का अभ्यास उन क्षेत्रों में पैदावार बढ़ाने के लिए दिखाया गया है जहां सूत्रकृमि मौजूद है। गहरी जुताई से कपास की जड़ों के शुरुआती विकास

के लिए मिट्टी खुल जाती है, जिसके बारे में माना जाता है कि इससे जड़ें, जड–गाँठ सूत्रकृमि के आक्रमण से बच जाती है। जब मिर्च और अन्य गैर–पोषक फसलें उगाई जाती हैं, तो रेनीफॉर्म सूत्रकृमि की आबादी 80% तक कम होने की सूचना मिली है। सामान्य तौर पर, मरीगोल्ड (*टैगेटेस पटुला*), जिन्निया (*जिननिया एलिगेंस*), गन्ना (*सैकरम ऑफिसिनैलिस*) और मक्का (*जिया मेस*) को फसल क्रम में शामिल करने से रेनीफॉर्म सूत्रकृमि आबादी कम हो जाती है। शोधो से पता चला है कि सरसों (*ब्रैसिका कैंपेस्ट्रिस*), कुल्फा (*पोर्टुलाका ओलेरासिया*), मेथी (*ट्राइगोनेला फेनम–ग्रेकेम*), जिन्निया (*जिननिया एलिगेंस*), शलजम (*ब्रैसिका रैपा*), मूग (*विग्ना मुंगो*), गेहूं (*ट्रिटिकम एस्टिवम*) और जौ (*होर्डियम वल्गरे*) को शामिल करने वाले फसल क्रम रेनीफॉर्म और जड गाँठ आबादी दोनों को कम कर दिया। सरसों (*ब्रैसिका* प्रजाति), तील (*सीसमम इंडिकम*), सनहेम्प (*क्रोटोलारिया स्पेक्टाबिलिस*), शतावरी और अफ्रीकी गेंदा जैसी फसलो में विरोधी प्रभाव होता है जो जड गाँठ सूत्रकृमि को दबा देता है। अफ्रीकी गेंदा, सीताफल और करेले, सूत्रकृमि पर विपरीत प्रभाव डालते पाए गए। सोरघम (ज्वार) को शामिल करने वाले फसल क्रम के परिणामस्वरूप मध्य भारत में रेनीफॉर्म सूत्रकृमि आबादी कम हो गई। हालांकि, जड़ गाँठ और रेनीफॉर्म सूत्रकृमि की विस्तृत मेजबान श्रृंखला, खेती और खरपतवार दोनों प्रजातियों के बीच, वर्तन की प्रभावकारिता सुनिश्चित करने के लिए पूरी तरह से खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, किसान आमतौर पर वैकल्पिक फसल अपनाने से हिचकिचाते हैं क्योंकि ये मुख्य फसल की तुलना में व्यावसायिक रूप से कम मूल्यवान होते हैं। कपास के स्थान पर हरी ज्वार या प्रतिरोधी सोयाबीन का उपयोग करते हुए दो वर्षीय फसल चक्रण काफी प्रभावी पाया गया है। कुसुम (*कार्थमस टिनक्टरियस*) में बुवाई के 45 दिनों के बाद रेनीफॉर्म आबादी में 96–100% की कमी पाई गई। चार महीने तक गैर–पोषक लाल मिर्च उगाने से *आर. रेनिफोर्मिस* आबादी में 80% की कमी पाई गई। ट्रैप फसल जैसे सनहेम्प (*क्रोटोलारिया स्पेक्टाबिलिस*) का उपयोग जो जड़ गाँठ डिंभक को फंसाता है उसे उगाया जा सकता है और हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। मेजबान प्रतिरोध संवेदनशील किस्मो को आनुवंशिक रूप से प्रतिरोधी किस्मों से बदलना सूत्रकृमि प्रबंधन के लिए एक सुविधाजनक विकल्प है। के.क.अनु.सं. में रेनीफार्म सूत्रकृमि के लिए प्रतिरोधी किस्म विकसित करने का काम चल रहा हैं।

जैविक नियंत्रण

हाल के वर्षो में जड गाँठ और रेनीफॉर्म सूत्रकृमि के खिलाफ संभावित जैव–संस्थाओं या घटकों पर बहुत ध्यान दिया गया है। सूत्रकृमि अंडे को परजीवी बनाने वाले फंगस *पैसीलोमाइसेस लिलासिनस* के साथ हाल के प्रयोगो ने अच्छा असर दिखाया है। माइकोरिजल कवक, *ग्लोमस फासिकुलेटम* भी रेनीफॉर्म सूत्रकृमि की आबादी को कम करने के लिए प्रभावकारी पाया गया था। पिछले दशक में, बैक्टीरिया *पेस्टुरिया पेनेट्रांस* को जड़–गाँठ सूत्रकृमि के खिलाफ संभावित रूप से महत्वपूर्ण जैविक घटक के रूप में पेश किया गया है। सबसे बडा नुकसान इसके संबंधो की बाध्यकारी प्रकृति है जो इसे कृत्रिम संवर्धन के लिए अक्षम बनाती है। जड–गाँठ और रेनीफॉर्म सूत्रकृमि के विरुद्ध बडी संख्या में उगाए गए और खरपतवार पौधो के अर्क को प्रभावी पाया गया है। नीम, झिननिया, गेंदा और कई आवश्यक तेल भी सूत्रकृमि प्रबधन में प्रभावी हैं। नीम (*अजादिराका इंडिका*), करज (*पोंगामिया ग्लोब्रा*), महुआ (*मधुका लैटिफोलिया*) आदि के अखाद्य केक के साथ मिट्टी में संशोधन भी जड–गाँठ सूत्रकृमि के खिलाफ प्रभावी देखा गया है। और रेनिफोर्मिस के लिए जहरीले पौधे के अर्क में गेंदा (*टैगेटेस इरेक्टा*), सीताफल (*एनोना स्क्वैमोसा*), कोरफाड (*एलो बारबाडेंसिस*), जोंख–मारी (*एनागलिस अर्वेन्सिस*), करेला (*मोमोर्डिका चारेंटिया*), डबल बीन (*फेजोलस लुनाटस*) शामिल हैं।

मृदा स्वास्थ्य में सुधार मृदा स्वास्थ्य का रखरखाव और जैविक अवशेषो को शामिल करने से पौधों की वृद्धि को बढावा मिलता है और सूत्रकृमि की आबादी कम हो जाती है। बडी मात्रा में जैविक कचरा, जैविक खेतीवाडी द्वारा *आर. रेनिफोर्मिस* को नियंत्रित कर सकता है। 5–20 टन/हेक्टयर में मिलाए गए पोल्ट्री गोबर सूत्रकृमि के लिए घातक पाए गए है। 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अमोनियम सल्फेट से समृद्ध नीम चूरा, मूगफली की खली या नीम के बीज की खली जैसी सामग्री के साथ मृदा संशोधन रेनीफार्म सूत्रकृमि के विरुद्ध प्रभावी पाया गया। हालांकि, दृश्यमान परिणाम प्राप्त करने के लिए बडी मात्रा में सामग्री को मिट्टी में डाला जाना चाहिए। इसके अलावा, परिणाम भिन्न हो सकते हैं क्योंकि मिट्टी की बनावट जगह–जगह पर बदलती रहती है।

वांछनीय उद्देश्य

फसल को सूत्रकृमि क्षति की पहचान करना सूत्रकृमि के प्रबंधन की दिशा में पहला कदम है। यह सूत्रकृमि घनत्व का अनुमान लगाने में विशेषज्ञता की कमी और फसल की घटती पैदावार के साथ सहसबद्ध होने के कारण है। फसल स्वास्थ्य सूत्रकृमि रोगो को 'पौधों की जीवन शैली रोग' कहा जा सकता है। मोनो क्रॉपिंग (साल दर साल एक ही फसल), कृत्रिम उर्वरको का उपयोग और सीमित संख्या में लोकप्रिय किस्म कुछ ऐसे कारक हैं जो सूत्रकृमि रोग की घटनाओं की वृद्धि में योगदान कर सकते हैं। अच्छी फसल पद्धतियों का रखरखाव जैसे कि जैविक संशोधन का उपयोग, फसल वर्तन और गर्मी की जुताई से अच्छी

मिट्टी और फसल स्वास्थ्य के लिए सूत्रकृमि क्षति को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

फसल प्रतिरोध :

प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग के संबंध में बहुत प्रगति नहीं हुई है क्योंकि खराब उपज और प्रतिरोधी किस्मों की गुणवत्ता उन्हें अतिसंवेदनशील किस्मों की तुलना में अनाकर्षक बनाती है। साथ ही उनके प्रतिरोध का संकीर्ण आधार उन्हें क्षेत्र की आबादी में मौजूद उच्च विषाणुजनित समयुग्मी या सहोदर प्रजातियों के चयन के लिए अधिक प्रबल बनाता है। आदर्श नेमाटाइड की खोज और कम विषैले, स्लोएम मोबाइल नेमाटाइड का विकास सूत्रकृमि कीटों के नियंत्रण में बहुत उपयोगी होगा।

समान प्रतीत होने वाले शब्द

१) आदी - आदि

'आदी' अर्थात आदत

'आदि' अर्थात इत्यादी

२) इति-ईति

'इति' शब्द का प्रयोग अन्त समाप्ति के अर्थों में होता है।

'ईति' दैवी भय के लिए तथा 'भीति' सांसारिक भय के लिए।

३) कुल-कूल

'कुल' अर्थात वंश अथवा परिवार।

'कूल' कोण, किनारा।

४) खाई-खायी

'खाई' अर्थात गहरा गड्ढा।

'खायी' – खाया।

27.

वैज्ञानिक एवं परम्परागत खेती : आपसी सामंजस्य की आवश्यकता

डॉ. सतीश कुमार सैन, प्रधान वैज्ञानिक

श्री संजीव कुमार, तकनीशियन (टी-1)

डॉ. सुरेंद्र कुमार वर्मा, प्रधान वैज्ञानिक

डॉ. अमरप्रीत सिंह, वैज्ञानिक

भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसन्धान संस्थान,
क्षेत्रीय स्टेशन सिरसा, हरियाणा -125055

भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर करती है तथा भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है इस कारण यह कहना गलत नहीं होगा की कृषि भारत अर्थव्यवस्था की रीढ है। पुराने समय से ही भारत में पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल कृषि की जाती थी। कृषि में ज्यादा से ज्यादा प्राकृतिक एवं जैविक तत्वों का प्रयोग में लिया जाता था, जिसस जैविक और अजैविक घटकों के बीच आदान–प्रदान का चक्र (पारिस्थितिकी तत्र) निरन्तर चलता रहा था। जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नही होता था तथा मानव और प्रकृति में सतुलन बना रहता था। लगभग 8000 हजार साल पुरानी सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से मिले अवशेषो में मिट्टी के हल और मवेशियों के अवशेष इस बात का प्रमाण है की प्राचीनकाल में भी कृषि को उतना ही महत्व दिया जाता था, जितना आज के समय में दिया जाता है।

भारत में बैशाखी, पोंगल, गुड़ी पाडवा, बिहू मकर सक्राति इत्यादि त्योहार ये सिद्ध करते है कि कृषि हमारे लिए सिर्फ रोजगार ही नही बल्कि मानव जीवन में कृषि को ईश्वर के रूप में पूजा जाता है। भारतवर्ष में पुरातन काल से ही कृषि एक समकित व्यवसाय के रूप में मानव एवं पर्यावरण के सामंजस्य को ध्यान में रखकर की जाती थी। उस समय कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मुर्गी पालन भी किया जाता था जो कि एक दूसरे के पूरक होते है। इन सबके प्रमाण हमारी वैदिक सभ्यता में भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम हैं जिन्हें हम गोपाल एवं हलधर के नाम से संबोधित करते हैं अर्थात कृषि एवं गोपालन संयुक्तरूप से अत्यधिक लाभदायी होते है, जो प्राणी मात्र व वातावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

हम यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि भारत की संस्कृति जो लाखों सालो से जानी–मानी है और उस दौरान धरती की उपजाऊ शक्ति कभी कम नहीं हुई जबकि पिछले कुछ दशकों में रासायनिक खाद का प्रचार–प्रसार और इसका आयात अधाधुंध ढग से बढा है। भारत देश को सोने कि चिड़िया इसलिए नही कहा जाता था कि यहाँ सोना निकलता था बल्कि इसलिए कहा जाता था की यहाँ की मिट्टी में वो बात थी जो की इसमें हम हर प्रकार की फसल ऊगा सकत थे। अनेको बार विदेशियों के आक्रमणों को झेलने और 250 साल विदेशियो के आधीन रहने के दौरान, हमारे देश की धनसम्पदा को जी भरकर लूटा गया, यहाँ के प्राकृतिक ससाधनों का अधाधुन्ध दोहन किया गया, जबरन नील, रेशम और कपास की खेती करवाई गयी। जब देश आजाद हुआ तब हमारे भारत की यह हालात हो गइ की हमारे लिए खाने का अनाज भी विदेश से आता था। भारत के विकास में उस वक्त कृषि के महत्त्व को समझा गया की कृषि से ही देश का उत्थान संभव है। इस दूरदर्शिता के साथ हमारे दूसरे प्रधानमत्री श्री लालबहादुर शास्त्रीजी ने जय जवान और जय किसान का नारा दिया। परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य जीवनदायनी नदियो और कृषि भूमि को अपनी नादानता के कारण प्रदूषित करते जा रहे है। हमारे देश में सन 1970 के दशक से हरित क्रांति की शुरुआत के साथ ही कृषि भूमि में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग प्रारभ हुआ था और अधिक से अधिक पैदावार लेने के लिये उर्वरको का इस्तेमाल लगातार बढाया गया। इन रासायनिक खादों के इस्तेमाल व अधिक पैदावार वाली सकर किस्मों के चयन से उत्पादन तो बढा लेकिन सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि भूमि बेजान होती चली गयी और उपजाये गये अनाज, फल और सब्जियाँ बस्वाद होते चले गये हैं तथा इनकी पौष्टिकता घटती चली गयी है। रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों से पैदा होने वाले पदार्थ के लगातार इस्तेमाल से मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी घट रही है। फलस्वरूप वर्तमान में मनुष्य अनेक प्रकार की

बीमारियो की चपेट में आ गया है। इसक साथ ही पृथ्वी की ऊपरी परत खराब हो रही है।

वर्तमान समय में फसलों से कम समय में ज्यादा पैदावार और ज्यादा मुनाफे के लिए अंधाधुन्ध रासायनिक खादों का प्रयोग हो रहा है और कृषि भूमि का अत्याधिक दोहन हो रहा है जिससे कृषि भूमि के प्राकृतिक तत्व नष्ट हो रहे है। कृषि में खेती को सतत रखने का उद्देश्य अधिक उत्पादन लेने के लालच ने भुला दिया। इन सबके कारण कृषि घाटे का सौदा होने वाला है और जिसके वर्तमान में भी संकेत दिखने लगे है। क्योंकि बदलते परिवेश मे पशुपालन धीरे–धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह–तरह की रासायनिक खादों व कीटनाशकों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग हो रहा है। इन सबके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थों के चक्र का संतुलन बिगडता जा रहा है और वातावरण प्रदूषित होकर, जो सम्पूर्ण मानवजाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। फसलों में उत्पादकता वृद्धि रुक गयी है भूमि में उर्वकता क्षमता का पतन हो रहा है और एक निश्चित मात्रा मे उत्पादन प्राप्त करने के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना पड रहा है। यदि मानव को आने वाले समय में अच्छे स्वास्थ्य के साथ जीवन व्यतीत करना है, तो मानव को प्रकृति के साथ तालमेल मिला कर ही चलना हितकर होगा। इसका एकमात्र विकल्प जैविक खेती और फसलचक्रण का कृषि में समायोजित प्रयोग करना है। समय–समय पर हमारे कृषि वैज्ञानिक भी ऐसी चेतावनी देते रहे हैं कि मृदा को लम्बे समय तक, एकल रासायनिक खाद के साथ इस्तेमाल करने से भूमि की उर्वरता क्षमता पर बुरा प्रभाव पडता है। वास्तव में कृषि भूमि की गुणवत्ता और उर्वरता क्षमता जैविक खाद, जैविक कीटनाशक एवं पर्यावरण अनुकूल कृषि क्रियाओं के समायोजन के उपयोग से ही लम्बी अवधि तक बनी रह सकती है।

प्रथम हरित क्रांति संकर किस्मों एवं रासायनिक उर्वरकों पर आधारित थी मगर द्वितीय हरित क्रांति मृदा उर्वरक और भूमि में जैविक तत्वों एवं सूक्ष्म लाभकारी जीवों को बढ़ाने से ही सफल हो सकती है। वर्तमान खेती में जैविक खेती का संतुलन बनाकर ही उत्पादन क्षमता और कृषि मे निरंतरता बढाने में सफलता प्राप्त हो सकती है। कृषि में रसायनिक खादो, एवं कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर, जैविक खादों एवं कीटनाशकों का उपयोग करने से या इनके समायोजन से अधिक से अधिक फसल उत्पादकता बढा सकते हैं। ऐसा करने से भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे। वर्तमान समय में जो किसान जैविक खेती की ओर अग्रसर हुए है उन्हें प्रगतिशील किसानो की श्रेणी मे गिना जाता है। क्योंकि जो किसान जैविक खेती कर रहे है उससे कई लाभ हुए है। उनमे से एक तो उनकी कृषि भूमि की उर्वरकता क्षमता लगातार बढती है, दूसरा जैविक खेती से फसल मे रोग एवं हानिकारक कीटो की रोकथाम होती है साथ ही साथ कम लागत में अच्छी पैदावार मिलती है। तीसरा वातवरण को बिना नुकसान पहुँचाते हुए जैविक खेती की उपज से बाजार में अच्छे दाम/भाव मिलते है क्योंकि वर्तमान समय मे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ता भी यही चाहता है कि वह कीटनाशक खाद्य पदार्थ दाल अनाज, फल और सब्जियों को न खाये।

पौधो को कुल मिलाकर आवश्यक्तानुसार तीन प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व हैं प्राथमिक (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम), द्वितीयक (कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर) तथा तृतीयक पोषक तत्व (बोरान, जिंक, मैग्नीज, आयरन, कॉपर, मॉलिब्डेनम एवं क्लोरीन)। पौधों के विकास तथा प्रजनन के लिये नाइट्रोजन सबसे जरूरी पोषक तत्व है। पौधों की आवश्यकता के अनुसार ये सभी तत्व मृदा में उपलब्ध होते हैं। भूमि के अत्याधिक दोहन/सघन खेती करने से भूमि में प्राथमिक, द्वितीय पोषकतत्वों के अलावा तृतीयक या सूक्ष्म पोषक तत्वों कि भी कमी होने लगी है साथ ही साथ इसकी पौधों मे प्राप्त होने कि क्षमता मे भी कमी आयी है। इसका कारण कृषि मे घटती हुई विविधिता और मिट्टी मे लाभकारी सूक्ष्म जीवों का नष्ट होना है यदि इन तत्वों की मृदा मे कमी पायी जाती है तो उसकी पूर्ति के लिये निम्नलिखित तरीकों से निरंतर पोषकतत्व प्रदान किये जा सकते हैं। जैसे फसल चक्र, हरी खाद, केंचुओं खाद, जैविक उर्वरक, जैविक कीटनाशक, औषधीय पौधो का उपयोग इत्यादि। इसके अलावा जैविक पदार्थ जैसे वर्मीवाश, जीवामृत, वेस्ट डीकम्पोजर इत्यादि भी कृषि में लाभदायक सिद्ध हो सकते है। इनके उपयोग से मृदा की उर्वरकता क्षमता बढाने के साथ साथ लाभकारी सूक्ष्म जीवों की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है।

1. **फसल चक्र** – खेत मे लगातार एक ही फसल उगाने के कारण कम उपज प्राप्त होती है तथा भूमि की उर्वरकता क्षमता कम हो जाती है। एक ही फसल लगातार एवं लम्बे समय तक उगाने से भूमि के निश्चित सतह/क्षेत्र मे विशिष्ट प्रकार के पोषक तत्वों का दोहन होता है तथा अन्य तत्वों का सही उपयोग भी नहीं होता है। फसल चक्र न अपनाने के कारण उपजाऊ भूमि का क्षरण, जीवांश की मात्रा मे कमी, भूमि से लाभदायक सूक्ष्म जीवों की कमी, मित्र जीवों की संख्या मे कमी, हानिकारक कीट पतगों का बढाव, खरपतवार की समस्या मे बढ़ोत्तरी, जलधारण क्षमता में कमी, भूमि के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में परिवर्तन, क्षारीयता में बढोत्तरी, भूमिगत जल का प्रदूषण इत्यादि के फलस्वरूप रासायनिक खाद एवं कीटनाशियों का अत्यधिक प्रयोग करने जैसी समस्याओं का सामना करना पडता है। इन सब विनाशकारी अनुभवों से बचने के लिए फसल चक्र विधि को सही तरीके से समझने की और उसे अपनाने की आवश्यकता है। प्राचीन काल से ही किसी खेत मे एक निश्चित अवधि के लिए भूमि की उर्वरता को बनाये रखने के उद्देश्य से एक ही फसल न उगाकर फसलों को

अदल–बदल कर या दो या दो से अधिक फसल एक साथ (मिश्रित खेती) उगाने की परम्परा चली आ रही है। वैज्ञानिक तौर पर फसल उत्पादन की इसी परपरा को फसल चक्र कहते हैं अर्थात किसी निश्चित क्षेत्र पर लम्बी फसलों को अदल – बदलकर उगाने की क्रिया को फसल चक्र कहत है। फसल चक्र से मृदा की उर्वरता बढती है, भूमि में कार्बन – नाइट्रोजन के अनुपात में वृद्धि होती है, भूमि में विषाक्त पदार्थ एकत्र नहीं हो पाते हैं, भूमि के पीएच तथा क्षारीयता में सुधार होता है, भूमि की संरचना में सुधार होता है, मृदा क्षरण की रोक थाम होती है, फसलों का बिमारियों से बचाव होता है, कीटो का नियंत्रण होता है, खरपतवारों की रोकथाम होती है तथा सालभर आय प्राप्त होती रहती है। फसलचक्र से फसल अवशेषो का संपूर्ण उपयोग होता रहता है एवं सीमित सिचाई सुविधा का समुचित उपयोग हो जाता है।

फसलचक्र में दलहनी फसलों का समावेश अत्याधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है क्योंकि दलहनी फसलों से एक टिकाऊ फसल उत्पादन प्रक्रिया विकसित होती है। दलहनी फसलों की जडो में पाए जाने वाला राइजोबियम जीवाणु जो की वायुमंडल में मौजूद नाइट्रोजन को योगिकीकृत करके पौधों को उपलब्ध कराता है एव जिसके परिणामस्वरूप अगली फसल के लिए इस प्रक्रिया में मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है एव मृदा की उपजाऊ क्षमता बढती है। इन सबके कारण खेत में रासायनिक खाद जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस इत्यादि की कम मात्रा उपयोग में लानी पडती है। फसल चक्र अपनाने से किसी एक फसल में लगाने वाले रोग एवं कीटो की संख्या में भी कमी आती है और मृदा में जैव विविधता को बढावा मिलता है जो की फसलों के सतत उत्पादन में फायदेमंद होता है।

कृषि यंत्रों का उचित उपयोग – उन्नत कृषि पद्धति के लिए कृषि यंत्रों की उपयोगिता बहुत महत्व रखती है। एक फसल लेने के बाद फसल अवशेष बहुत बडी समस्या होती है जिसका हम आधुनिक कृषि यंत्रों द्वारा सही तरीके से प्रयोग कर सकते है। फसल अवशेष कभी जलाने नहीं चाहिए क्योंकि फसल अवशेष जलाने के कारण एक तो पर्यावरण प्रदूषित होता है और दूसरा भूमि की उपजाऊ क्षमता पर भी विपरीत असर पड़ता है। फसल के अवशेष जलाने से मिट्टी में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्म जीवों और कीटों का अंत हो जाता है जो की स्वस्थ भूमि के लिए आवश्यक है। फसल अवशेष को छोटे–छोटे टुकडो में काटकर गहरी जुताई करके खेत में मिला देना उचित होता है इस काम के लिए रोटावेटर बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। फसल अवशेष को हम रोटावेटर एवं मुवेबल श्रेडर की सहायता से चूरा–चूरा कर के मिट्टी में मिला सकते है। ये अवशेष ही भूमि में सड़कर मिल जाने के बाद खाद का काम करते है।

2. हरी खाद – मिट्टी की उर्वरता बढाने के लिए हरी खाद भी एक उत्तम साधन है। बिना सडे गले हरे पौधे को जब नाइट्रोजन या कार्बन जीवांश की मात्रा बढाने के लिए कृषि भूमि में मिलाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद कहते है। हरी खाद एक प्रकार की जैविक खाद है जो शीघ्र विघटनशील है एवं हरी खाद भूमि के लिए वरदान साबित हुई है। यह भूमि की भौतिक एवं रासायनिक सरंचना का भी सुधार करती है तथा मृदा में पोषक तत्वो की उपलब्धता को बढाती है। हरी खाद से भूमि में कार्बनिक पदार्थो की वृद्धि होती है एवं कार्बन–नाइट्रोजन के अनुपात में वृद्धि होती है जिससे सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं सक्रियता बढती है। हरी खाद से अम्लीय मृदा में फॉस्फोरस के स्थिरीकरण में कमी होती है एवं भूमि जनित रोगो की रोकथाम होती है। इसके उपयोग से भूमि में जल क्षरण कम होता है और जल धरहन की क्षमता में भी बढोतरी होती है। हरे पौधों विशेषकर दलहनी पौधों, हरा चारा, ढेंचा, बरसीम, ग्वार अदि फसल को एक निश्चित अवधि के बाद खेत में खडी फसल को खेत में ही काटकर भूमि में मिलाकर हरी खाद के रूप में उपयोग कर सकते है। हरी खाद के लिए उपरोक्त फसलों को भूमि में मिलाने का समय बुआई के आठ से दस सप्ताह के अंदर आ जाता है। इस समय अवधि के दौरान फसल की अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि हो चुकी होती है तथा पोधों के तने व जडें नरम रहते है जो भूमि में मिलने के बाद शीघ्र विघटित हो जाते है। हरी खाद के माध्यम से 135 – 140 कि.ग्रा यूरिया प्रति हेक्टेयर की बचत हो सकती है। हरी खाद कि फसल खरीफ या रबी फसल के बीच अतिरिक्त बचे हुए समय में ली जा सकती है।

रिजका, चरी, बरसीम जैसी हरी खाद फसल से हम दोहरा लाभ कमा सकते है इन्हे दो से तीन बार काटकर पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध करा सकते जिससे की दुधारू पशुओ की दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता काफी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त पशुओं के चारे में रेशेवाले तत्व की मात्रा भी हरे चारे द्वारा बढायी जा सकती है जो की पशुओं के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभकारी है। कुछ फसल उत्पादन एव हरी खाद दानों के रूप में भी उपयोग में ली जा सकती है जो मृदा एवं मनुष्य दोनों के स्वास्थ्य के लिए हितकर है। बाद में बरसीम को पुनः उगने पर खेत में हैरो, रोटावेटर या मिट्टी पलट हल (मोल्ड बोल्ड प्लाऊ) की सहायता से खेत में मिलाकर भूमि की उवरता को बढा सकते है। इसी प्रकार दलहनी फसलों से भी फलिया की तुड़ाई करन के बाद इन फसलो को खेत में मिला सकते है।

3. कम्पोस्ट खाद – वर्तमान समय में वैज्ञानिको ने कम्पोस्ट बनाने कि कई तकनीकियां का विकास किया है। फसल अवशेष/ पशुओं से प्राप्त अपशिष्ट जैसे गोबर, मूत्र जो अपने आपमें एक बहुत ही उपयोगी खाद है। फसल अवशेष जलाने की बजाय इसका उपयोग जैविक खाद बनाने में कर सकते है। नाडेप विधि

इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जिस मे हम फसल अवशेष को जैविक खाद में परिवर्तित कर सकते है। पिछले कुछ वर्षो से खेतो में फाने/पराली अथवा अन्य फसल अवशेष जलाने के मामलो में जो वृद्धि हुई है इस कारण पर्यावरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा है। सरकार ने भी फसल अवशेष जलाने वालो के खिलाफ कडी कार्यवाही का रुख अपनाया है। इन सबसे बचने का एकमात्र उपाय यह है कि फसल अवशेष का समुचित उपयोग जैविक खाद बनाने में करे। नाडेप विधि से भूमि में गड्ढा बना कर फसल अवशेषो को परत दर परत दबाकर, सड़ाकर बेहतरीन जैविक खाद बना सकते है। इससे एक तीर से दो निशाने साधने जैसा काम होगा अर्थात एक तो फाने अथवा अन्य फसल अवशेष जलाने के कारण पर्यावरण प्रदूषित नहीं होगा दूसरा जैविक खाद बनने के कारण रासायनिक खाद की खपत में कमी आएगी। स्वच्छ भारत कार्यक्रम में भी जैविक खाद बनाने की नाडेप विधि महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि इस विधि में कृषि अवशेषो का इस्तेमाल के अलावा रसोई घर में प्रयोग होनेवाली सामग्री फल तथा सब्जियों के छिलकों का भी उपयोग कर सकते है।

मुर्गी की बीट (अपशिष्ट) : अन्य खादों की तरह मुर्गी बीट भी खाद के रूप में उपयोग में ले सकते है। साधारण कम्पोस्ट से इस खाद में पोषक तत्व बहुतायत में होते है। एक एकड़ कृषि भूमी के लिए कम से कम 20 क्विंटल सडी हुई मुर्गी बीट डालनी चाहिये।

केचुआँ खाद : केचुआँ कृषकों का मित्र एव 'भूमि की आंत' कहा जाता है और मिट्टी में पाया जाता है। रासायनिक खादों के अत्याधिक प्रयोग से भूमि में पाया जाने वाला ये जीव सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। यह सेन्द्रिय पदार्थ (ऑर्गनिक पदार्थ), ह्यूमस व मिट्टी को एकसार करके जमीन के अन्दर अन्य परतों में फैलाता है इससे जमीन पोली होती है व हवा का आवागमन बढ जाता है तथा भूमि की जलधारण क्षमता भी बढ जाती है। केचुएँ के पेट में जो रासायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, उससे भूमि में पाये जाने वाले नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैलशियम व अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता बढती है। केचुआँ मिट्टी में नत्रजन 7 गुना, फास्फोरस 11 गुना और पोटाश 14 गुना बढ़ता है। केचुआँ खाद बनाने में ज्यादा मेहनत करने की आवश्यक्ता नहीं होती है। केचुआँ खाद में नाइट्रोजन की मात्रा 6 से 12 प्रतिशत होती है। इस खाद के उपयोग से भूमि में जैविक पदार्थो की मात्रा में वृद्धि होती है। वर्मी कम्पोस्ट वाली मिट्टी में भू–क्षरण कम होता है तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता में सुधार होता है। केंचुआँ खाद को मिट्टी में मिलाने से भूमिकी उपजाऊ क्षमता बढती है, जिसका सीधा प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पडता है ।

केंचुआँ खाद मेढ बनाकर या गड्ढा बनाकर तैयार की जाती है। मेढ वाली विधि केंचुआँ खाद बनाने के लिए अच्छी होती है क्योंकि इस विधि में वायु संचार होने के कारण केंचुएँ शीघ्र खाद बना देते है। मेढ विधि में मेढ की ऊचाइ दो फीट, चौडाई तीन फीट और लम्बाई आवश्यकतानुसार रखी जा सकती है। केचुआँ खाद बनाने के लिए सबसे पहले मेढ के नीचे की परत फसल अवशेष से बनाए। उसके बाद 25 से 30 दिन पुराने गोबर की परत लगाए और 40 से 50 केचुआँ प्रति वर्ग फीट के हिसाब से डालें। इस प्रकार दो से तीन परत लगाने के बाद पुरानी बोरी से ढक दे ताकि मेढ में नमी बनी रहे। नमी बनाये रखने के लिए मेढ पर पानी का छिडकाव गर्मी के दिनों में प्रतिदिन करे और सर्दी के मौसम में आवश्यकतानुसार मेढ के ऊपर फसल अवशेष (पराली, ग्वार) की परत लगाकर पुरानी बोरी से ढक दे ताकि तापमान ज्यादा कम न हो पाए। खाद बनाने के लिए 25 से 30 डिग्री तापमान सही होता है। इस प्रकार केंचुए दो से तीन महीने में खाद तैयार कर देते है।

वेस्ट डीकम्पोजर : जैविक खाद तथा कम्पोस्ट बनाने के लिए वेस्ट डीकम्पोजर बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वेस्ट डीकम्पोजर में कई सूक्ष्म जीव निहित होते है जो की फसल अवशेष और अन्य जैव कार्बनिक पदार्थों को प्रकृतिक रूप से अपघटन की क्रिया को शीघ्र क्रियाशील कर देते है। यह पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है क्योंकि इन सूक्ष्म जीवों की सहायता से कम समय में फसल अवशेषों, रसोई घर से निकले फलों व सब्जियों के छिलकों को शीघ्र सडाकर कम्पोस्ट खाद बनाने में इस्तेमाल कर सकते है।

वर्मीवाश (Vermiwash) : अनुसधानों में पाया गया है कि वर्मीवाश भी कृषि में महत्वपूर्ण एव लाभदायक है। यह एक तरल जैविक खाद है जो ताजा वर्मी कम्पोस्ट व केंचुएँ के शरीर को धोकर तैयार किया जाता है। वर्मीवाश के उपयोग से न केवल उत्तम गुणवत्तायुक्त उपज प्राप्त कर सकते हैं बल्कि इसे प्राकृतिक जैव कीटनाशक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। वर्मीवाश में घुलनशील नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश मुख्य पोषक तत्व होते हैं। इसके अलावा इसमें हार्मोन, अमीनो एसिड, विटामिन, एंजाइम, और कई उपयोगी सूक्ष्म जीव भी पाये जाते हैं।

गोमूत्र गोबर : गोमूत्र पोटाश व नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत होने के साथ–साथ एक जैविक कीटनाशक भी है। इसका ज्यादातर प्रयोग फल, सब्जी तथा बेलवाली फसलो को कीडों व बीमारियों से बचाने के लिए किया जाता है। गोमूत्र को 5 से 10 गुना पानी के साथ मिलाकर छिडकने से शत्रुकीट नियंत्रण होता हैं। आज के समय में बाजार मे उपलब्ध कीटनाशी का प्रयोग जब हम फलों, सब्जियों व अन्य खाद्यान्नों पर करते है तो उनके अवशेषो का प्रभाव ज्यादा समय तक रहता है और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते है। परन्तु देसी गाय का मूत्र व उसके दूध से बनी छाछ, घी आदी बहुत ही उपयोगी कीटनाशी साबित हुए है जो की

किसान द्वारा घर पर ही तैयार किया जा सकता है और यह पर्यावरण के साथ साथ स्वास्थ्य को भी कोइ नुकसान नहीं पहुचाता है।

जीवामृत : वर्तमान समय में जीवामृत वास्तव में भूमि एव फसलों की लिए अमृत का काम करता है। यह एक बहुत ही उपयोगी व प्रभावशाली जैविक खाद है जिससे की भूमि की उपजाऊ क्षमता बढती है जो पौधों को वृद्धि और विकास में सहायक होती है। इसके प्रयोग से पौधे स्वस्थ रहते है और फसल उत्पादन भी बढता है। जीवामृत बनाने की लिए गोमूत्र, पुराना गुड, बरगद या पीपल के पड की नीचे की मिट्टी, किसी भी दाल के आटे को मटके या ड्रम में डालना होता है। यह मिश्रण 8 से 10 दिन में बनकर तैयार हो जाता है और इसे छानकर उपयोग में लिया जाता है। एक एकड के लिए 10 लीटर जीवामृत की आवश्यकता होती है जो की सिचाइ के साथ या छिडकाव के रूप में उपयोग किया जा सकता है ।

4. जैवउर्वरक – कृषि वैज्ञानिकों के शोध द्वारा खोजी गयी यह एक बहुत ही उपयोगी एव बहुमूल्य खोज है। जैव उर्वरक एक प्रकार के सूक्ष्म जीव होते है जो बीजोपचार एवं मृदा उपचार के लिए उपयोग में लिए जात है। जैव उर्वरको में निहित सूक्ष्म जीव पौधों की जडों के साथ मिलकर पौधों के लिए वातावरण में उपलब्ध आवश्यक पोषक तत्व नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के साथ–साथ फास्फोरस, पोटाश और अन्य आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की घुलनशीलता बढाकर पौधों को प्रदान करने में सहायक होते है। इनके प्रयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढती है और जीवों के स्वस्थ्य और पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव नही पडता है। इनके उपयोग से रासायनिक खादो कि आवश्यकता कम पडती है। माईकोइराजा, राइजोबियम, एजाटोबक्टर, एजोस्पिरिलियम, बेसिलस, सुडोमनाश जैसे जीवाणुओं से बने जैव उर्वरक फसलो के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए है। जैव उर्वरक भूमि में पोषक तत्वों कि कमी होने के बावजूद भी पौधों को पर्याप्त मात्रा में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व प्राप्त कराने में सहायक होते है।

5. जैविक कीटनाशक/बायो पेस्टिसाइड्स – वर्तमान समय में पादप रोग दुनिया भर में खेती की प्रमुख समस्याओं में से एक है जिनके कारण कृषि उपज में आर्थिक रूप से बहुत नुकसान होता है। बायोपेस्टिसाइड्स प्रकृति में व्याप्त लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु एवं फफुंदों पर आधारित होते है। ये पादप रोग व हानिकारक कीटो को वातावरण के नुकसान किये बिना नियत्रण करने की क्षमता रखते है। ट्राइकोडर्मा, सुडोमनाश, बेसिलस, जो की मिटटी को उपजाऊ बनाते है और हानिकारक रोग एव कीटों के नियत्रण में बहुपयोगी है। इन मित्र सूक्ष्म जीवों का जैविक खाद के साथ प्रयोग करने से ये मित्र फफूद जैविक खाद के साथ भूमि में तेजी से पनपते है जिस कारण फसलो में मृदा जनित रोगों की सम्भावना काफी हद तक कम हो जाती है। जैविक कृषि पद्धति के लिए मित्र फफूद ट्राइकाडर्मा एक वरदान साबित हुआ है। क्योंकि यह न केवल मृदा उपचार के काम में बहुउपयोगी सिद्ध हुआ है अपितु बीजोपचार के लिए भी उत्तम पाया गया है। यह रोग कारक जीवों की वृद्धि को राकता है या उन्हें मारकर पौधों का रोग मुक्त करता है। यह पौधों की रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढाता है। ट्राइकोडर्मा सभी प्रकार के अनाज, फल, सब्जियों, कपास, गन्ना, आलू, चाय, मिर्च, सूरजमुखी आदि पर रोग नियंत्रण में बहुपयोगी सिद्ध हुआ है। अतः इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं, विशेषकर कवकनाशी पर निर्भरता कम होती है। बीजोपचार के लिए प्रति कि.ग्रा. बीज में 4–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर की आवश्यकता होती है और मृदा उपचार के लिए 100 कि.ग्रा. जैविक खाद, केचुआ खाद, हरी खाद में 1 लीटर ट्राइकोडर्मा की आवश्यकता होती है।

ट्राईकोडर्मा से भूमि उपचार और बीजोपचार के अलावा इसका उपयोग हम बागवानी और सब्जियो की खेती में भी कर सकते है। टमाटर, बैंगन, प्याज और शिमला मिर्च जैसी सब्जियों के रोगप्रबधन ने ट्राईकोडर्मा या स्यूडोमनास से बीज तथा जड उपचारित करने पर इनमे लगने वाले अलटरनेरिया, पछता झुलसा रोग, फ्यूजेरियम विगलन रोग, बैक्टीरियल विल्ट जैसे रोगो से फसलो को बचाया जा सकता है। ट्राईकोडर्मा विरिडी और ट्राईकोडर्मा हरजियेनम पौधा में रोगों की रोकथाम में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। टमाटर और फूलगोभी को ट्राईकोडर्मा से उपचारित करने पर यह बात सिद्ध हुइ है की ट्राईकोडर्मा जैविक नियंत्रण के लिए बहुत ही लाभदायक है। गन्ने में लगनेवाले लाल सडन रोग को भी ट्राईकोडर्मा से भूमि उपचारित करने पर बचाया जा सकता है। बागवानी में पौधों की जडों में सडी हुई गोबर खाद में ट्राईकोडर्मा और स्यूडोमनास मिलाने से फल गिरना, फल सडना जैसे रोगो से पौधों को बचाया जा सकता है। अमरुद, चीकू, आम जैसे फलों की खेती में रोगों की रोकथाम में ट्राईकोडर्मा बहुत ही लाभदायक है। मेटारीजियम, बेसिलस, स्यूडोमानास, बवेरिया बेसियाना, वर्टिसिलियम इत्यादि पर आधारित जैविक कीटनाशक जैविक खेती में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए है। इनका प्रयोग फसलो को रसचूसक कीटों जैसे सफेद मक्खी, एफिड, थ्रिप्स, लाल मकडी, मिलीबग और सुंडी तना छेदक कीट, इत्यादि से बचाने में कर सकते है। रासायनिक दवाओं, विशेषकर कीटनाशक पर निर्भरता कम होती है। इस कारण इन कीटनाशकों का मानव तथा प्रकृति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

6. औषधीय पौधों का उपयोग – प्रकृति से प्राप्त औषधीय पौधों में पादप रोग एव हानिकारक कीटो के नियत्रण की व्यापक क्षमता होती है। नीम की उपयोगिता का अदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है वर्तमान में रासायनिक खाद उत्पादक भी

नीम लेपित उपलब्ध होने लगी है। यूरिया के अनावश्यक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता क्षमता कम होने के साथ–साथ फसलों की उपज पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है। नीमकोटेड यूरिया के प्रयोग से फसल की उपज में 15–20% वृद्धि हो सकती है। इससे पौधों को लम्बे समय तक और सही मात्रा में नत्रजन प्राप्त होती है।

नीम तेल का इस्तेमाल वातावरण को प्रदूषित किये बिना फसलों को हानिकारक कीटो से बचाने में कर सकते है। इसके पत्तो एव खली से बनी बहुमूल्य जैविक खाद में कीटनाशक क्षमता होती है जो की भूमि की उपजाऊ क्षमता व मृदा स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी साबित हुई है। नीम के तेल का छिडकाव कपास, भिंडी, मिर्च, टमाटर, कद्दू आदि फसलों में रसचूसक कीटों के शुरूआती प्रकोप को नियंत्रण करने के लिए कर सकते है। इसके छिडकाव के कारण शत्रुकीटों जैसे सफेद मक्खी, तना छेदक कीट, थ्रिप्स, मिलीबग को नियंत्रित किया जा सकता है। मित्रकीटों जैसे मकडियां, ओरियस, क्राइसोपर्ला, ब्रैकान, कॉक्सीनेला नीम तेल से प्रभावित नहीं होते है तथा यह मनुष्य और अन्य पशु –पक्षियां के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक नहीं होते है। छिडकाव के लिए नीम का तेल प्रति एकड 1 लीटर की आवश्यकता होती है । इसके अलावा लहसुन, तुलसी, आक, सीताफल, महुआ, अरंड, टीमरू इत्यादि पौधो में कीटनाशक गुण पाए जाते हैं ।

हल्दी और गोमूत्र का घोल : हल्दी जिस प्रकार मानव स्वास्थ्य के लिए वरदान है उसी प्रकार यह औषधि पादप कीट नियत्रण के लिए भी उपयोगी है। 20 ग्राम हल्दी पाउडर, 200 मिली गोमूत्र और 2 से 3 लीटर साबुन के पानी का धोल 24 घटे मिलाकर रखने से बाद पौधों पर छिडकाव करने से रसचूसक कीटों जैसे एफिड, सुंडी और लाल मकडी इत्यादि का नियंत्रण किया जा सकता है।

औषधीय पौधों का घोल : 25 ग्राम लाल मिर्च, 100 ग्राम सीताफल के पत्ते और 50 ग्राम नीम की निबोली को पीसकर 5 लीटर पानी मिलाकर छिडकाव करने से रसचूसक कीटों जैसे एफिड, पत्ता मरोड़ सुंडी आदि से पौधों का बचाव किया जा सकता है ।

वर्तमान खेती में वैज्ञानिक एवं जैविक खेती का संतुलन बनाकर ही उत्पादन क्षमता और कृषि में निरंतरता बढाने में सफलता प्राप्त हो सकती है । भारत की परंपरागत धरती पोषण की नीति, एवं वैज्ञानिक एव परम्परागत खेती के आपसी सामजस्य को अपनाकर, जैविक खाद, जैविक कीटनाशक एव पर्यावरण अनुकूल कृषि क्रियाओं के समायोजन करने से कृषि भूमि की गुणवत्ता और उर्वक्ता क्षमता लम्बी अवधि तक बनी रह सकती है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।। अर्थ – **"सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।"** आदि शब्दों को चरितार्थ कर सकते है।

- **मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा जब हिंदी विश्व की सांस्कृतिक भाषा होगी।**

– सुमित्रनंदन पंत

- **हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्यवाहियाँ अपनी–अपनी प्रांतीय भाषाओं में चलाना चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्यवाहियों की भाषा हिंदी होनी चाहिए।**

–महात्मा गाँधी

- **यदि भारत की किसी भाषा को सर्वसाधारण की भाषा माना जाए तो वह हिंदी है।**

– बंगला मैगजीन, 1874 ई.

- **राष्ट्रभाषा के प्रचार–प्रसार में दक्षिण–भारतीयों ने बहुत बड़ा योगदान दिया।**

– सा.का. पाटील

- **भाषा राष्ट्रीय एकता का सशक्त साधन है। हिंदी इस दृष्टि से एकता का अच्छा माध्यम बन सकती है।**

– लाल बहादुर शास्त्री

- **मैं किसी भी कीमत पर अपना देश किसी अन्य देश से नहीं बदलना चाहूँगा।**

– निर्मल वर्मा

28. कपास उत्पादन में आधुनिक कृषि सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व

डॉ. सिद्धार्थ एम. वासनिक, प्रधान वैज्ञानिक
फसल उत्पादन विभाग
भा.कृ.अनु.प.- केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

कृषि योग्य भूमि अब सीमित होती जा रही है। मौसम के प्रतिकूल प्रभाव एवं उन्नत तकनीक के अभाव से किसानों को कृषि क्षेत्र से लाभ कम होता जा रहा है। इसका सबसे मुख्य कारण किसानों द्वारा परम्परागत खेती पर निर्भर रहना है। अतः किसानों को वैज्ञानिक तरीकों से खेती करके तथा सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके अपने सीमित क्षेत्र से ज्यादा मात्रा में उत्पादन कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है। कृषि के क्षेत्र में आई सी टी (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी) का मुख्य केन्द्र आवश्यकता के आधार पर किसानों को, वे जहाँ भी हो जानकारी प्राप्त कराना है।

सूचना प्रौद्योगिकी का मुख्य उद्देश्य कृषि एवं उससे संबंधित तकनीक को किसानों तक पहुँचाना एवं कृषि से संबंधित उनकी सारी समस्याओं का निवारण करना है। भारत सरकार द्वारा डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत प्रत्येक गाँव को इन्टरनेट से जोडा जा रहा है इसका मुख्य उद्देश्य देश के हर एक वर्ग तक सूचना तकनीक का लाभ पहुँचाना एवं इसका उपयोग किसानों की समस्याओं के समाधान जैसे किसानों को मौसम के अनुसार फसल की जानकारी एवं तदानुसार मौसम से संबंधित जानकारी समय–समय पर उपलब्ध कराना है। सूचना तकनीक के उपयोग से बुआई से पौध तक संरक्षण, रासायनिक उर्वरक का उपयोग, कीटनाशी दवाओं के प्रयोग, खरपतवारनाशी और बीज से जुड़ी जानकारी और सेवा प्रदान की जाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी के महत्व को देखते हुए कपास अनुसंधान संस्थान के जरिए कपास विकास एवं उत्पादन में इसकी सेवा कपास उत्पादकों को उपलब्ध करने के उद्देश्य से एवं किसानों तक तुरन्त जानकारी पहुँचाने तथा प्रसार की संकल्पना को बहुआयामी बनाने के प्रयास जारी है ताकि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रसार प्रणाली के जरिए किसानों के ज्ञान में बढ़ोत्तरी की जा सके तथा कपास उत्पादन में भी बढोत्तरी हो सके।

ई-कपास नेटवर्क

कपास किसानों को सटीक एवं प्रभावकारी जानकारी पहुँचाने हेतु विस्तार की नयी रणनीति 'ई कपास नेटवर्क' को केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा कपास पर प्रौद्योगिकी मिशन: मिनी मिशन (टी एम सी प्रकल्प एम एम–1) अंतर्गत 2012 से शुरु किया गया है। 'ई कपास' प्रणाली वह संचार प्रणाली है जो सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करके कपास आधारित विकसित तकनीकियों को सलाह द्वारा किसानों, विस्तार कार्यकर्ताओं तथा दूसरे कार्यकर्ता को उन्नतशील पद्धति से जोड़े रखता है। 'ई कपास नेटवर्क' प्रणाली का मुख्य उददेश्य अनुसंधान एवं परिवर्तन की जानकारी किसानों को घर बैठे दी जा सकती है। अतः यह समय एवं धन की बचत में सहायक है। यह प्रणाली 'कहीं भी' 'कभी भी' कपास संबधित जानकारी को उपलब्ध कराने का साधन है। 'ई कपास' प्रणाली से देश के किसानों को उनके मोबाइल से जोड कर अतिशीघ्र समय पर एवं किसानों के जरूरत अनुरुप उपयुक्त कपास तकनीक संबधित जानकारी प्रसारित की जाती है। चेतावनी एवं अलर्ट सेवाएँ पंजीकृत किसानों को समय समय से पहुँचायी जाती हैं जिससे किसान को सकारात्मक बदलाव के साथ कपास उत्पादन एवं कपास संबधित समस्याओं का हल घर बैठे विशेषज्ञों द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रणाली के जरिए संरक्षण प्रौद्योगिकी कीड़ा का आकलन, कीडों से गंभीर परिस्थिति, खरपतवार प्रबंधन, जलसंभार आदि के बारे में अवगत करके विभिन्न नौ प्रदेशों को उनकी भाषा में किसानों को अतिशीघ्र जानकारी प्रदान करने में मदद हो रही हैं। भारत के प्रमुख कपास उत्पादक जिलों के सहभागी केन्द्रों द्वारा कपास उत्पादक किसानों को उनके मोबाईल क्रमांक के साथ पंजीकृत किया गया है। ई-कपास

लाभार्थी के रुप में, 18 सहभागी केन्द्रो से 3.75 लाख किसानो को पूरे देश में कपास उत्पादक राज्यो से सी.आय.सी.आर., नागपुर के प्रमुख देखरेख में प्रौद्योगिकी हस्तातरण हेतु पंजीकृत किया गया है, जिसमें महाराष्ट्र से 1.0 लाख से अधिक किसान सम्मिलित है।

मोबाइल आधारित वॉइस संदेशों द्वारा सूचना प्रसारण

आज के युग में मोबाइल फोन का उपयोग काफी हद तक बढा है। और यह एक सशक्त माध्यम के रुप में प्रस्तुत हुआ है तथा सभी आयु के लोग इसका रोजाना इस्तेमाल कर रहे हैं। मोबाइल इडस्ट्री का भारत में, चीन के बाद दूसरे नबर पर कारोबार बढा है इसलिये बढती हुई मोबाइलों को ध्यान में रखकर इस माध्यम को केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्था, नागपुर ने कपास एडवाइजरीज को किसानो को ध्वनि संदेश भजन का महत्वपूर्ण काम शुरु किया है!

सी.आई.सी.आर. तथा उसके साथ जुड़े 18 केन्द्रों द्वारा किसानों को ध्वनि संदेश ऑटोमैटिक फोन कोल्स के रुप में पहले से ही रिकॉर्ड किये गये सदेशो को पंजीकृत किसानों के मोबाईल नबर पर सर्विस प्रोवाइडर के माध्यम से भेजी जाती रही है। यह सेवा कोई भी टेलीकॉम नेटवर्क से सभी किसानों को भेजी जाती है। ध्वनि संदेश सेवा ने काफी हद तक किसानो को प्रभावित किया है, इससे भाषा को पढने में कठिनाई महसूस करने वाले तथा अशिक्षित किसानों को लाभ हुआ है। यह सेवा पंजीकृत किसानों को मुफ्त उपलब्ध कराई गई है। सन 2012 से 2017 तक करीब 3.75 लाख किसानों को कपास उत्पादन सबंधित संदेशों को भारत की नौ विभिन्न भाषाओं में तैयार कर 2 करोड से अधिक संदेश (प्रत्येक संदेश 30 सेकंड) में भेजे गये है। किसानों को सलाह, संदश के जरिये तकनीकों के बारे में अवगत कर कम पढे लिखे किसानों तथा जो सुनने में ही विश्वास करते हैं, उन्हें घर बैठे जानकारी प्राप्त होने से संस्थान की सराहना की जा रही है। भेजे गए संदेश फोन के व्यस्त होने अथवा कवरज क्षेत्र के बाहर होने पर भी इस प्रणाली द्वारा दोबारा संदेश प्रेषित किए जाने की व्यवस्था है जिससे किसानों द्वारा सदेशों को प्राप्त करना सुनिश्चित किया गया है। कुछ समय बाद संदेश कॉल्स को दोहरा कर सदेशों को सफलता पूर्वक भेजा जाता है। लाभार्थियों के लिए लगभग 40–72 संदेश, प्रत्येक 30 सेकंड का विकसित करके भेजे गये है।

सोशल मीडीया/वेबसाईट

'ई कृषि सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से खेती में उभर रही नवीनतम तकनीक है। इसके द्वारा किसानो को विभिन्न सोशल वेबसाइट जैसे– फेसबुक, वॉटसऑप के जरिए समूह में जोडा जा रहा है, तथा समूह में विभिन्न क्षेत्रो के कृषि वैज्ञानिक एव सलाहकार जुडे रहने से वे किसानो की समस्याओं को सुनते है एवं और उनकी समस्याओं का निदान करते है। कपास में अधिक उत्पादकता एवं उच्च उपज बीज का चयन क्षेत्रों के अनुसार उच्च उपज देने वाली बीज तथा मौसम के प्रतिकूल प्रभाव से फसल के बचाव संबधित जानकारी कपास वेबसाईट पर उपलब्ध की जाती है। किसानों को ये जानकारी इन्टरनेट के माध्यम द्वारा मिल जाती है। सी.आय.सी.आर. वेबसाईट - www.cicr.org.in पर जाकर किसान सप्ताह की एडवायजरी का लाभ लेकर कपास प्रौद्योगिकी से लाभान्वित हो सकते हैं।

समाचार पत्रों द्वारा उपयुक्त कपास पखवाड़ा संदेश

सस्थान की ओर से हर पखवाडे में कपास संबंधित संदश तथा एडवायजरी बनाकर मराठी के प्रसिद्ध समाचार पत्र जैसे एग्रोवन, कृषकोन्नती, सकाळ, देशोन्नती, कृषि जागर आदि स्थानीय पेपर में छापा जाता है ताकि ज्यादा से ज्यादा कपास अनुसंधान संबंधित लाभ किसानों को मिले। उत्पादन बढाने हेतु समन्वित पोषक तत्वों का प्रबंधन, कीट एवं रोग प्रबंध, अन्तः फसल, खरपतवार प्रबंधन आदि की जानकारी एवं सलाह द्वारा उसका प्रचार करके कपास तकनीकी के आधार पर अधिक उत्पादकता हासिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है।

किसान अपने घर बैठे फोन करके तथा समाचार पत्रों एवं वेबसाईट द्वारा अपनी कपास कृषि समस्या का समाधान पा सकता है। सूचना और संचार क्रांति का कृषि में अधिक से अधिक उपयोग करके हम कृषि को नई दिशा दे सकते है जिससे देश में कपास उत्पादो का उत्पादन बढेगा और किसानों की वित्तीय स्थिति और मजबूत होगी।

29.

खादी-विचार, कल और आज

डॉ. उल्हास जाजू
सेयानिवृत्त प्राध्यापक,
महात्मा गांधी आयुर्विज्ञान सस्थान, कस्तुरबा हेल्थ सोसायटी, सेवाग्राम, वर्धा

अगस्त 1944 में आगाखा महल की जेल से छूटकर गाधीजी सेवाग्राम आये। दो साल के कारावास में हुए चिंतन ने गांधीजी के खादी विचार को यू टर्न मिला। अभी तक की खादी राहत की खादी थी, लाचारी की खादी थी। गांधीजी लोकसशक्तिकरण की खादी देखना चाहते थे। उन्ही के शब्दों में –

- "मैने जो दिया सो पैसा दिया। असली चीज– स्वावलबन –लोगों को नहीं दिया, भिक्षा ही दी।"
- "खादी सर्वव्यापक नही हुयी। खादी भडारों में बिकनेवाली खादी हस्तकला के ख्याल से कुछ लोगो का पेशा बनी रहेगी"
- "खादी शहरों में बिक सकती है, देहातों में नहीं। खादी बेचने की चीज नहीं, पहनने की चीज है। देहातियो के लिये खादी हम सहजप्राप्त नहीं बना सकें है, यह हमारी हार है।
- "चरखासघ की हस्ती मिट सकती है, इसका कारण है कि हम सरकार की दया पर जीते है। सरकार की दया पर जीनेवाली खादी मेरे स्वराज्य की खादी नहीं। वह सत्ता की दासी है, अहिंसा की रानी नहीं।"
- "चरखे की मान्यता निरी मूर्तिपूजा न हो। चरखा अहिंसा का प्रतीक है। सूझ–बूझकर कातो।"
- "खादी रोटी की तरह घर में ही पकनी चाहिये। बाजार का खाकर जीने में नाश है। जैसे रोटी वैसा कपडा, यहीं नारा बनेगा।"
- "ग्रामोद्योग व्यवस्था मशीन की स्पर्धा के आगे महँगी बन बैठी हैं। देहातो को सजीवन करना हो तो समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हाथ डालना होगा।"
- "खादी केवल अर्थशास्त्र ही नहीं, नीतिशास्त्र जरूरी है, अन्यथा वह शुद्ध अर्थ नहीं।"
- "वस्त्र स्वावलंबन से कुछ भी कम, मेरे स्वराज्य की खादी नहीं।"

गांधीजी ने मत्र दिया – कात सो पहने, पहन सो कात।

गाधीजी ने सुझाव दिये–

- खादी की बिक्री बद हो।
- सूत के बदले में कपडा देने की नीति अपनायें। इस नीति के कारण सब खादी–भंडार बैठ जाये और खादी पहननेवाले खादी छोड़ दें, तो मैं उसे सत्य की विजय मानूंगा। यदि कोई नही कातेगा तो मै अकेला कातूँगा।
- गांव में खादी बने और गांव–परिसर में ही बिके। (स्वदेशी)
- खादी सारे ग्रामोद्योगों के साथ चले। वह ग्राम सगठन और ग्राम–उत्थान का प्रतीक बनें।
- जो वस्तुएँ हम पैदा नहीं कर सकते वे बदले में प्राप्त की जाये। (गाँधीजी दैनंदिन जीवन में रूपये की आवश्यकता मर्यादित करना चाहते थे। बाजारमुक्ति की दिशा उसका जारिया था।)
- वस्त्र–स्वावलबन का व्रतपूर्वक स्वीकार ही स्वराज्य की शक्तिसाधना का आरभबिंदु होगा यह सुझाते हुए गाधीजी उसकी पैरवी यों करते है – मैं जो खाता हूं, वह मेरा उत्पादित नही है। मै अपने देशवासियों से छीनी हुयी कमाई पर गुजर कर रहा हूँ। यथाथ कताई करनेवालो के लिये, खादी सादगीपूर्ण, शोषणमुक्त जीवन का प्रतीक है, एक वृत्ति है। कताई उस व्यक्ति के लिये प्रार्थना है, एक आत्मदर्शन का साधन है।"

गांधीजी जिस समतामूलक, शोषणमुक्त (अहिंसात्मक),

सहयोगी, सहभागी (मैत्र) समाज की संकल्पना का लक्ष्य रखते थे, उसके वाहक के रूप में खेती, गोपालन, ग्रामोद्योग आधारित अर्थरचना की पैरवी कर रहे थे। इस शुद्ध अर्थरचना की नींव पर आदर्श समाज के राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक दालनों का निर्माण हो सकेगा ऐसी उनकी निष्ठा थी।

हमने गांधी–विचार की उपेक्षा ही कर डाली!

खेती और ग्रामोद्योग निर्वाहक्षम बनना यह स्वराज्य की ओर पहला कदम होगा और ऐसी अर्थनीति को भारत सरकार अपनायेगी, इस आकांक्षा की पूर्ति न हो पायी, यह गाँधी–विचार की शोकांतिका है। स्वाभाविकतः स्वराज्य का जो समतामूलक, शोषणमुक्त ढांचा गांधीजी को अपेक्षित था, खडा न हो पाया। भारत का समाज श्रमजीवी और बुद्धिजीवी दो वर्गों में बट गया। बुद्धिजीवी वर्ग बिना श्रम किये रूपये बटोर सके और श्रमजीवी वर्ग गरीबी रेखा के नीचे ढकेलता ही चला गया। प्रतिनिधिक लोकतंत्र का साधन चुनाव हमने अपनाया, वह अशुद्ध साधन साबित हुआ। वह समाज को all men are equal but some are more equal than others के आयाम तक ले आया। समाज–जीवन पर बाजार की पकड मजबूत होते गयी और बाजार में राज करनेवाला रूपया 'लफंगा' (इति विनोबा) बन बैठा। प्रचुर पैसा कमानेवाले बुद्धिजीवी और श्रमाधारित जीवन जीनेवाले श्रमजीवी के बीच की लडाई का युद्धक्षेत्र बाजार है।

ऐसी समाज व्यवस्था में विचार क्या जिंदा रह पायेगा ? बाजार के खादी की नौका तो डूबते ही नजर आती है। खेती गोपालन और ग्रामोद्योग आज की बाजार व्यवस्था में निर्वाहक्षम नहीं बन पायेंगे यह 'गरीबी' पर मंथन करने वाले श्री वि.म. दांडेकर और नीलकंठ रथ भी सप्रमाण सिद्ध कर चुके है। बाजार व्यवस्था के आमूलाग्र परिवर्तन की राजकीय इच्छाशक्ति नहीं है। अपने सत्व की सुरक्षा के लिये, श्रमजीवी वर्ग को बाजारमुक्ति ही एक पर्याय है। जीवनावश्यक सारी वस्तुओं के उपभोग के स्वावलबन के सिवा 'लफंगे रूपये' के चंगुल से मुक्ति नही मिल सकती।

यह भांपकर ही गांधीजी ने जीवन के हर पहलु में स्वावलबन का मार्ग सुझाया। स्वावलबन सशक्तिकरण की गंगोत्री है। इसका दर्शन गांधी–विचार में पाते है। खादी ग्रामोद्योग विचार में निहित बाजारमुक्ति और स्वावलंबन, मानवीय तकनीकी विचार में यंत्रमुक्ति और श्रम–स्वावलबन, नई तालीम–विचार में स्वावलंबी उद्योग और निधिमुक्ति, 'रामनाम ही अंतिम उपचार है' इस कुदरती स्वास्थ्य विचार में और तत्वज्ञान विचार में तो 'आत्म स्वावलंबन' का दर्शन करवाया।

गांधीजी स्वावलंबन तक ही रुके नहीं, परस्परावलंबन की पैरवी की, जो मैत्र–धारणा के लिये पूरक होगी। यह पथ जब सर्वजनावलबन के मुकाम तक पहुँचेगा तब ग्रामस्वराज्य गढा जायेगा।

क्या स्वावलबन के इस मंत्र को खादी–विचार में हम जिंदा रख सकते है?आज की प्रतिकूल समाज व्यवस्था में खादी का क्या स्थान होगा?

- बाजार की खादी व्यापक नहीं हो सकेगी। कपड़े की मिलो को और सिंथेटिक कपडे पर रोक लगाने की राजनैतिक इच्छाशक्ति आज के शासन में नही है। खादी केवल ग्रामोद्योग क्षेत्र में सुरक्षित करने का निर्णय शासन नही लेगा।

- निर्वाहक्षम खादी, बाजार में मिलनेवाले कपडे की तुलना में सस्ती नहीं हो सकती। हस्तकला की खादी धनवान शौकियों में जिंदा रह भी जाये तो भी व्यापक नहीं हो सकेगी। बाजार की खादी बुद्धिजीवी, शहरी लोग ही खरीद सकते है, वह भी ग्रामोद्योग से सहानुभूति रखने वाले ही।

अतः शुद्ध खादी व्रतपूर्वक जीने की तमन्ना रखनेवाले व्यक्तियों तक ही सीमित रहेगी। क्या कपास उत्पादन करने वाला किसान खादी अपनायेगा ?

स्वावलबन की खादी, बाजार–मुक्ति दिलानेवाली (रूपये की आवश्यकता कम करने वाली) खादी, शायद व्रतपूर्वक जीने की चाह रखनेवाला श्रमजीवी किसान अपनायेगा यह आशा हमने रखी थी।

कपास के बदले में पूनी देकर, दो तकवे के अंबर चरखे पर सूत कातकर, सूत के बदले में ग्राम–सेवा–मंडल से कपडा पाकर, वस्त्र स्वावलबन का प्रयोग हुआ। अर्थलाभ न देनेवाली खादी के लिये, सूत–कताई के लिये पर्याप्त समय किसान निकाल न पाया। प्रयोग सफल नही हुआ। मात्र व्रतपूर्वक जीने की चाह रखने वाले सज्जन–समर्थ की पहचान हुयी।

कपास के बदले में, ना मुनाफा ना नुकसान तत्व पर ग्राम–सेवा–मंडल ने वस्त्र स्वावलबन की जिरह की। इस प्रयोग को समग्र ग्रामस्वावलबन के एक अंग के रूप में चलने देने की आकांक्षा से 'स्वावलबन के लिये सेंद्रीय खेती' के प्रयोग का एक अंग माना। उत्पादन कम होने से, सेंद्रीय खेती की उपज बाजार में मार खाती है। बाजार की अनिश्चितता के कारण, व्रतपूर्वक चलने की मनीषा रखने वाले सज्जन–समर्थ भी 'स्वावलबन के लिये खेती' को आंशिक रूप से ही स्वीकार कर सके। हमारे आग्रह से देशी कपास की बुआई करने वाले किसान इनेगिने ही है और वह भी 60 किलो कपास के उत्पादन तक। 60 किलो कपास वस्त्र–स्वावलबन के लिये जमा करने की मांग ग्राम सेवा मंडल करता है। इससे अधिक कपास के उत्पादन को बाजार से 20 प्रतिशत अधिक कीमत ग्राम सेवा मंडल सेंद्रीय देसी कपास को देगा यह प्रस्ताव किसान को अधिक देशी कपास का उत्पादन लेने के लिये लुभा न सका।

सोयाबीन और कपास इस क्षेत्र में नकदी फसल है। जिन किसानों को खेत में मजदूर लगाना पड़ता है, उनकी मजदूरी देने का आधार यह नकदी फसल है। अतः खेत के बडे हिस्से पर कपास और सोयाबीन लगाने के बाद, अन्न–स्वावलबन के लिये लगनेवाली उपज के लिये, पर्याप्त जमीन बचती नहीं। पेट भरने के लिये लगनेवाला अनाज, फल, सब्जी, तेल, मसाला, बाजार से खरीद कर लाने में (उंची कीमत पर) नकदी फसल से आनेवाली कमाई की ओर मुह ताकना पडता है। निसर्ग साथ न दे तो उच्च पूंजी निवेश करने किसान का कर्ज बाजारी बना देता है।

ऐसी विषम परिस्थिती में, मर्यादित उत्पादन देने वाला सेंद्रिय कपास (4 क्विंटल प्रति एकर), किसान सातत्य से लगायेगा यह दुर्दम्य आशावाद हुआ। अधिक उत्पादन देने वाला देसी बीज शायद अधिक स्वीकार्य होगा। इस कार्यशाला में ऐसे बीज का चयन कर उसका प्रयोग करने का प्रयत्न होना चाहिये। यदि समय के साथ, यह प्रयोग भी किसान व्यापक प्रमाण पर न अपनाये तो वस्त्र स्वावलंबन का क्या होगा ?

जो भी कपास किसान लगाना पसंद करता है, वह फिर असेंद्रिय क्यों न हो। 60 किलो ग्राम–सेवा–मडल को देकर बदले में उसकी खादी हम लेना पसद करेंगे क्या? क्या खुरदुरी, मोटी, वजनी, अनाकर्षक खादी किसान अपनायेगा? यदि इस मुकाम पर भी असफलता आये तो प्राप्त अर्थरचना में खादी को इच्छामरण स्वीकारना होगा। खादी व्रतपूर्वक जीनेवाले व्यक्तियों के जिंदगी में जिंदा रहेगी।

वैज्ञानिक उपकरण और उनका उपयोग।

मैनोमीटर	– यह गैस की दाब को निर्धारित करने वाला उपकरण है।
पाइरोमीटर	– इस उपकरण से दूर के पदार्थों का जिनका तापमान बहुत अधिक होता है, तापमान अंकित किया जाता हैं।
स्पीडोमीटर	– किसी मोटर अथवा अन्य गाड़ी की चाल का पता लगाने के लिए इस उपकरण का उपयोग किया जाता है।
टेकोमीटर	– यह वायुयान और मोटर नौका की चाल को निर्धारित करने वाला यंत्र है।
फोटोटेलीग्राफ	– तार के द्वार फोटो भेजने के लिये काम में लाया जाने वाला यंत्र।
रेनगेज	– किसी विशेष स्थान पर हुई वर्षा को मापने के लिये इसका उपयोग किया जात है।
टेलिस्कोप	– यह उपकरण बहुत दूर की वस्तुओं को देखने के काम में आता है।
थर्मोस्टेट	– इस यंत्र द्वारा तापक्रम पर नियंत्रण किया जाता है और किसी वस्तु का तापमान किसी बिन्दु पर नियत कर दिया जाता है।

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

ISBN 978-93-93826-02-2

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर

पोस्ट बैग क्र. 2, शंकरनगर पोस्ट ऑफिस, नागपुर - 440033 (महाराष्ट्र)

दूरभाष - (07103) 275536/38 फैक्स : (07103) 275529

ई मेल : director.cicr@icar.gov.in • वेब साइट : http://www.cicr.org.in

Published in **December, 2022** ISBN : **978-93-93826-02-2**

© Copyright. All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying or otherwise without the prior permission of the ICAR-CICR/ ICAR.